हमारी चिट्ठी, हमारी वाणी, प्रेरणा, भावना और आकांक्षा का मूर्तरूप अखण्ड ज्योति ही है, इसे भावना और ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए और इन पन्नों के साथ लिपटी हुई प्रेरणाओं को मनन और चिन्तन पूर्वक हृदयंगम करना चाहिए।

-अखण्ड ज्योति (दिसंबर 1962)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी,पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

संस्थापक- संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ. प्रणय पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी,मथुरा
दूरभाष नं. (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल न. 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं. (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक
वर्ष : 84 । अंक : 08
अगस्तः 2020
श्रावण-भाद्रपद : 2077
प्रकाशन तिथि : 01.08.2020
वार्षिक चंदा
भारत में : 220/- ₹
विदेश में : 1600/- ₹
आजीवन (बीस वर्षीय)
भारत में : 5000/- ₹

विचार

मानवीय मन की पहचान इसकी गतिशीलता से होती है। क्षण भर में कल्पना के पंख लगाकर काल, समय व दूरी की परिधियों को लाँघ कर कहीं भी जा पहुँचना मन का सहज स्वभाव है। व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों से उमड़ते-घुमड़ते- विचार मन की इसी सक्रियता को हवा देते हैं और उसकी गतिशीलता का माध्यम बनते हैं। यूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि विचारों का उद्भव हमारे मन के भीतर से ही होता है पर चिंतकों, दार्शनिकों ने विचारों के दो प्रकार माने हैं।

एक प्रकार के विचार तो वे हैं जो हमारे चित्त से जन्मे संवेदनों से प्रेरित हो कर हमारे अंतःकरण से अस्तित्व पाते हैं जबकि इनसे भिन्न दूसरे विचार वे हैं जो हमारी प्रवृत्ति के अनुसार बाह्य स्रोत से हमारे मन में प्रवेश करते हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने इस बाह्य स्रोत को बुद्धिमण्डल या नूस्फियर का नाम दिया और कहा कि- मानवीय मन नूस्फियर के जिस स्तर से अपना सपर्क स्थापित कर लेता है, उसी स्तर का विचार प्रवाह मन को अपने प्रभाव में ले लेता है और मनुष्य विचारों के उसी प्रवाह में बहता चला जाता है व तदनुरूप आचरण करने लगता है।

मानवीय मन पर विचारों के इसी आधिपत्य को ध्यान में रखते हुए वैदिक वैज्ञानिकों, ऋषि-मुनियों ने ये प्रस्तावित किया कि चित्त की शुद्धि एवं मानवीय चेतना का परिष्कार ही रूपांतरण की एकमात्र प्रक्रिया है। मानवीय चेतना के विकास की उच्चता अथवा निम्नता ही वह कारण है, जिसके कारण विचारों का स्तर उच्च अथवा निम्न होता है। यदि मनुष्य का मन बुद्धिमण्डल के उन्नत स्तर के साथ संपर्क स्थापित कर सके तो उच्च विचारों का प्रवाह मन के धरातल पर अनायास ही होने लगेगा। इसी को महर्षि अरविन्द ने 'अतिमानस' एवं परमपूज्य गुरुदेव ने 'मनुष्य में देवत्व का उदय तथा धरती पर स्वर्ग का अवतरण' कहा। विचारों का ऊर्ध्वगामी होना, मानवीय अंतःकरण में सद्वृत्तियों का निरंतर प्रवाहमान होना ही मानवीय मन का रूपांतरण एवं विचारों की क्रांति है।

•••

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय- स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्रीराम मत्त

अगस्त 2020 व सितबर 2020 के पर्व-त्यौहार

सोमवार	03 अगस्त	रक्षाबन्धन	मंगलवार	01 सितबर	पूर्णिमा/ महालयारंभ
शुक्रवार	07 अगस्त	बहुला चौथ	बुधवार	02 सितबर	परम वंदनीया माताजी महाप्रयाण दिवस
मंगलवार	11 अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	रविवार	06 सितबर	परम वंदनीया माताजी जयंती
शनिवार	15 अगस्त	स्वतन्त्रता दिवस/अजा एकादशी	शुक्रवार	11 सितबर	मातृ नवमी
मंगलवार	18 अगस्त	कुशाग्रहणी अमावस्या	रविवार	13 सितबर	इन्दिरा एकादशी
शुक्रवार	21 अगस्त	हरितालिका व्रत	मंगलवार	15 सितबर	परमपूज्य गुरुदेव जयंती
शनिवार	22 अगस्त	श्रीगणेश चतुर्थी	गुरुवार	17 सितबर	विश्वकर्मा जयंती/ पितृमोक्ष
शनिवार	29 अगस्त	जलझूलनी एकादशी	रविवार	27 सितबर	कमला एकादशी

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। - संपादक

विशिष्ट सामयिक चिंतन

सुख-सुविधा के बढ़ते दौर में क्या प्रसन्न भी हैं हम?

मानवीय सभ्यता के इतिहास में विगत 500 वर्ष अभूतपूर्व क्रांतियों के वर्ष रहे हैं। इस अवधि में सांस्कृतिक, आर्थिक- यहाँ तक कि भौगोलिक दृष्टि से भी विश्व की दूरियाँ सिमट गयी हैं। आर्थिक दृष्टि से आज का एक सामान्य व्यक्ति भी जितनी संपदा व संपन्नता को लेकर बैठा है, उसका अनुमान लगा पाना भी आज से आधी सहस्राब्दि पहले संभव न था। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रांतियों ने मनुष्य को ऐसी शक्तियों से संपन्न कर दिया है, जिनको देखकर ऐसा लगता है मानो कॉमिक बुक्स में वर्णित सुपरहीरो यथार्थ में हमारे मध्य आ गए हों। एक सामान्य सा मोबाइल फोन भी आज इस तरह के आविष्कारों से सुसज्जित है जिनकी कल्पना भी कभी असंभव प्रतीत होती थी।

सुख, सुविधा, आराम की दृष्टि से आज हम निश्चित रूप से पहले की तुलना में ज्यादा संपन्न हैं परंतु प्रश्न उठता है कि क्या हम ज्यादा प्रसन्न भी हैं? क्या विगत सहस्राब्दियों में मानवता के द्वारा एकत्र की गयी संपदा को आत्मिक शांति के समकक्ष रखा जा सकता है? यदि नहीं; तो इस प्रगति, विकास, संपत्ति-संपदा की प्राप्ति को हम किस आधार पर तौल कर देख सकते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर देने से पहले यह सोच लेना व विचार कर लेना जरूरी है कि कि प्रसन्नता के मापदंड क्या हैं? राजनीतिक कट्टरवादियों के लिए किसी एक धर्म या वर्ण का प्रमुख होना प्रसन्नता का आधार हो सकता है तो वहीं पूँजीवादियों के लिए पैसों की बहार का आ जाना खुशी का पैमाना बन जाता है।

सामान्य रूप से सामाजिक प्रगति इसी पैमाने पर कार्य करती दिखायी पड़ती है कि हम ज्यादा से ज्यादा विकास करते हुए अपनी प्रसन्नता के आधार को ही सुदृढ़ करते रहे हैं। सत्य यह है कि विकास के साथ यदि कुछ लोग खुश होते दिखाई पड़ते हैं तो अनेको को कष्ट के दौर से भी गुजरना पड़ता है। यदि कृषिजगत की क्रांति ने कुछ लोगों को संपदा प्रदान की, तो अनेको को उसके कारण चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों से भी गुजरना पड़ा।

इसी तरह से यदि पूँजीवादी संकल्पना के आधार पर अमेरिका एवं ऑस्ट्रेलिया जैसे राष्ट्र बनते दिखाई पड़े, तो वहाँ के मूलनिवासियों को, नेटिव अमेरिकन एवं ऐबोरिजनल्स को अपनी जमीन, संस्कृति, गाँव व जीवनशैली को भी गँवाना पड़ा। वैज्ञानिक व औद्योगिक विकास के लाभ निश्चित रूप से हुए हैं। विगत दो सौ वर्षों में बालमृत्यु दर (चाइल्ड मोर्टलिटी रेट) 33 प्रतिशत से घटकर 5 प्रतिशत पर आ गयी है। अपराध की दर में कमी आने से लेकर अंतर्राष्ट्रीय युद्धों की संख्या में आई कमी भी एक सुरक्षित समाज की ओर इशारा करते हैं। इन सब सकारात्मक संकेतों के साथ ये भी सत्य है कि विकास के ये सभी कीर्तिमान कुछ न कुछ गँवाने के बाद ही प्राप्त हुये हैं।

आज की तारीख में युद्धों का लड़ना इतनी सहजता से संभव नहीं है क्योंकि पिछली सदी में हम एक नहीं दो विश्व युद्धों की विभीषिका को झेल चुके हैं। चीन यदि आज प्रगति करता दिखाई पड़ता है तो उसके पीछे उन 1 से 5 करोड़ लोगों की मौतें भी शामिल हैं, जो वहाँ की सरकार की नीतियों के कारण सन् 1952 से 1961 के मध्य वहाँ पर हुईं। स्पष्ट है कि बाहर की दुनिया में पनपते प्रसन्नता के मानदंड, किसी न किसी प्रतिकूलता को झेलने के बाद ही मिल पाए हैं।

जब बात प्रसन्नता की चल रही हो तो ये चिंतन भी जरूरी हो जाता है कि हम प्रसन्नता को मापते किस आधार पर हैं? प्रचलित मान्यता तो यही कहती है कि यदि व्यक्ति स्वस्थ है, धन-धान्य से समृद्ध है तो वह सुखी है, प्रसन्न है; परंतु क्या सचमुच प्रसन्नता का आधार इतना ही है? जिनके पास धन आया है- क्या वे अपने आपको उतना ही अकेला नहीं पाते हैं? घरों के आकार बढ़ जाने के साथ-साथ क्या टूटते परिवार आज की घोषित समस्या नहीं हैं? मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वैयक्तिक प्रसन्नता या सब्जेक्टिव वेलबीइंग- प्रसन्नता का पैमाना मानी जाती है। परिभाषा की दृष्टि से देखें तो प्रसन्नता या सुख वह है, जो व्यक्ति अपने भीतर अनुभव करता है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

यदि प्रसन्नता आंतरिक तत्व है तो उसको बाहरी दृष्टि से कैसे तौला जा सकता है? इसीलिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में पूछे जाने वाले प्रश्नों को आज के चिंतक अर्थहीन घोषित करार देते हैं।

उदाहरण के तौर पर यदि एक मनोवैज्ञानिक शोध यदि यह सिद्ध करती है कि 1 लाख रुपये प्रतिमाह कमाने वाले, 50 हजार रुपये प्रतिमाह कमाने वाले से ज्यादा प्रसन्न हैं तो इस संबंध का अंतिम आधार क्या है? दूसरे शब्दों में क्या 1 अरब या 1 खरब कमाने वाले व्यक्ति की आंतरिक प्रसन्नता को भगवान बुद्ध के बुद्धत्व, परमपूज्य गुरुदेव के तप, महावीर की करुणा के समकक्ष रखा जा सकता है? विगत दिनों में हुई शोध स्पष्ट रूप से बताती है कि धन का आना, थोड़े समय के लिए तो प्रसन्नता का आधार बनता है; परंतु लंबी जीवनयात्रा में उसका मूल्य ज्यादा नहीं रह जाता।

उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जूझ रहा हो तो उसको अचानक प्राप्त हुआ धन निश्चित रूप से प्रसन्नता प्रदान करता है। परंतु एक खरबपति को यदि 1 करोड़ ज्यादा मिल जाएँ तो उसके लिए उस धन का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। एक सीमा के बाहर, धन भी अपने मूल्य को खोता हुआ नजर आता है। फिर धन ही क्यों, पद, प्रतिष्ठा, पारिवारिक एवं सामाजिक संबंध- सभी इसी परंपरा का पालन करते नजर आते हैं।

यदि मनोवैज्ञानिकों को छोड़कर बायोलोजिस्ट की दृष्टि से इस विषय को देखने का प्रयास किया जाए एवं उनकी दृष्टि से प्रसन्नता की परिभाषा को तय करने का प्रयास किया जाए तो उनका आधार बिल्कुल भिन्न है। उनके अनुसार हमारी मनोवैज्ञानिक प्रसन्नता, क्रमिक विकासवाद का तथा हमारी जैविक बनावट का परिणाम है। उनके अनुसार वर्षों के क्रमिक विकास ने हमारे तंत्रिका तंत्र को इस तरह से विकसित कर दिया है कि हम खुशी या प्रसन्नता का अनुभव सिरोटोनिन, डोपामिन एवं ऑक्सीटोसिन जैसे हॉर्मोनों के परस्पर संबंधों के आधार पर ही लगा पाते हैं। उनके अनुसार प्रसन्नता हमारे शरीर में निःसृत होने वाले इन रसायनों के अंतर्निहित समीकरणों का परिणाम है।

प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच प्रसन्नता का पैमाना मात्र इतना ही है या इससे कुछ ज्यादा बढ़ कर है? नोबेल पुरस्कार विजेता डेनियल काहनमेन ने अपनी एक शोध में लोगों से उनके एक औसत दिन का वर्णन करने को कहा। उनके दिन की लगभग प्रत्येक गतिविधि को पूछने के साथ-साथ उसने उनसे ये पूछा कि उस गतिविधि को करते समय वे कैसा अनुभव कर रहे थे? किस कार्य को करने में उन्हें क्यों व कितनी खुशी हुई? काहनमेन की शोध में कुछ परिणाम चौंकाने वाले निकल करके आए।

जैसे ज्यादातर माँ-बाप के द्वारा दिए गए उत्तरों के अनुसार उनके औसतन दिन, जिसमें बच्चों की निरंतर सेवा समिलित थी, कष्टकारक थे। उनकी नींद पूरी नहीं हो पा रही थी। बच्चों को दूध से लेकर भोजन कराने तक में उनकी सारी जीवनचर्या समाहित होती दिखाई पड़ती थी; परंतु इन सबके बावजूद लगभग हर माँ-बाप ने मातृत्व-पितृत्व की प्राप्ति को अत्यंत खुशी का कारण व आधार बताया। प्रश्न उठता है कि इस विरोधाभास का आधार क्या था? इसका कारण यह है कि आंतरिक तुष्टि को समाप्त करने में मिला थोड़ा कष्ट भी व्यक्ति सहर्ष स्वीकार करता है और यदि कष्ट पाने के पीछे उद्देश्य जुड़ा हुआ हो, तो वो कष्ट भी तृप्ति का माध्यम बन जाता है।

विगत दिनों में हुई वैज्ञानिक शोधें इस ओर इशारा करती हैं कि प्रसन्नता का मूल आधार जीवन में उद्देश्य की प्राप्ति है। यदि जीवन उद्देश्य से युक्त हो जाए तो जीवन का हर क्षण सुख व शांति का द्वार बन जाता है अन्यथा उसे बोझ बनते देर नहीं लगती। यदि व्यक्ति किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर कार्य में कष्ट पा रहा है तो वो कष्ट भी सुख व शांति का ही आधार बनते हैं। बच्चों की परवरिश में मिलने वाले कष्ट उन कार्यों में निहित उद्देश्य की तुलना में कम प्रतीत होते हैं और इसीलिए खुशी का कारण बन जाते हैं।

यही कारण है कि दूसरों के लिए कष्ट सहकर भी संत, सुधारक, शहीद, निर्द्वन्द्व जीवन जीते दिखाई पड़ते हैं; क्योंकि उनका जीवन, उद्देश्य को प्राप्त कर चुका है। इसीलिए भारतीय अध्यात्म आत्मज्ञान, आत्मानुसंधान व आत्मप्रतिष्ठा को स्थायी प्रसन्नता का द्वार बताता है, तो वहीं सुकरात डेल्फी के मंदिर में घुसने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं को जानने का संदेश देते नजर आते हैं। आज के वैज्ञानिक प्रगति के इस दौर में जब जीवन भाग-दौड़ का प्रतीक बन गया है, आत्मिक तुष्टि की प्राप्ति एक महत्त्वपूर्ण संकेत देती नजर आती है। •

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

जीवन उत्कर्ष के आधार

जीवन की श्रेष्ठतम संभावनाएँ- श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा की त्रिवेणी से प्रस्फुटित होती हैं। जहाँ इन तीनों का संगम होता है, वहीं से आध्यात्मिक जीवन का शुभारंभ होता है और वही आगे प्रवाहित होकर जीवन को परम लक्ष्य तक पहुँचाता है। यदि इनमें से किसी भी एक तत्व की कमी रह गयी, तो समझो जीवन बैसाखियों के सहारे चलने के लिए विवश हो जाता है व अपनी पूर्ण आभा के साथ प्रकट नहीं हो पाता और यदि इन तत्वों का सर्वथा अभाव हो गया, तो शनैः-शनैः धर्म-अध्यात्म का महान क्षेत्र विद्रूपता एवं विडंबनाओं से आक्रांत हो जाता है और व्यक्ति से लेकर समाज, राष्ट्र एवं युग- अनास्था के घोर संकट से गुजरने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं।

यदि व्यक्ति की श्रद्धा जाग्रत् नहीं है, तो निष्ठा निष्प्राण कर्मकाण्ड मात्र बनकर रह जाती है और प्रज्ञा मात्र बुद्धि चातुर्य का पर्याय बन जाती है- जहाँ अपनी सुख-सुविधाएँ एवं भौतिक लाभ ही सर्वोपरि दिखते हैं। माला के मनकों की गिनती चलती रहती है, अटक-गुरिया, सटक-गुरिया का खेल चलता रहता है और उनके परिणाम कुछ हाथ नहीं आते। भगवान के दरबार पर खुशामदी के सहारे व्यापार चलता रहता है। ऐसे में कितने भी पुरश्चरण कर डालें, फल नहीं मिलते; क्योंकि बिना श्रद्धा के साधना में प्राण नहीं आते। इसी तरह बिना प्रज्ञा के साधनापथ पर बढ़ गए तो पता ही नहीं चलता कि कब व्यक्ति की श्रद्धा-अंधश्रद्धा के बीहड़ वन में भटक गयी और निष्ठा-हठवाद, दुराग्रह और कट्टरता के शिकंजे में कसती गयी। ऐसी अंधश्रद्धा एवं बहकी निष्ठा के साथ विकृत धर्मधारणा क्या गुल खिला सकती है, यह आज की परिस्थितियों में स्पष्ट है। धर्म के नाम पर खेले जा रहे खूनी-खेल और आपसी विद्वेष-घृणा एवं अविश्वास से भरा विषाक्त वातावरण इसके दुष्परिणाम हैं।

इसी तरह निष्ठा से हीन श्रद्धा आँसू बहाती कोरी भावुकता भर रह जाती है, जो किसी सार्थक परिवर्तन की पटकथा लिखने में असक्षम होती है तथा प्रज्ञा कोरे बौद्धिकज्ञान, शास्त्रचर्चा, वाचालता एवं प्रवचन तक सीमित रह जाती है। जीवन की समस्याओं एवं समाधान से जिसका अधिक लेना देना नहीं रह जाता।

वास्तव में श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा तीनों आपस में अनन्य रूप से जुड़े हुए तत्व हैं। श्रद्धा- कारण शरीर का तत्व है, प्रज्ञा- सूक्ष्म शरीर का तथा निष्ठा- स्थूल शरीर का। तीनों मिलकर समग्र व्यक्तित्व को गढ़ते हैं। इस तरह ये क्रमशः भक्ति, ज्ञान एवं कर्म के पर्याय हैं। तीनों के संगम-समन्वय से ही अध्यात्म पथ की यात्रा आगे बढ़ती है एवं जीवन का समग्र उत्कर्ष संभव हो पाता है। इनके क्रम का निर्धारण व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर करता है। भावप्रधान व्यक्ति का शुभारंभ श्रद्धा-भक्ति से होता है तो वहीं विचारशील व्यक्ति बुद्धि-विवेक के साथ प्रारंभ करते हुए प्रज्ञा का संबल लेता है तथा कर्मप्रधान व्यक्ति निष्ठा के साथ आगे बढ़ता है; लेकिन एक तत्व का संबल लेते हुए दूसरे तत्वों का न्यूनाधिक समावेश साथ में अवश्य रहता है।

भक्ति क्रमशः परिमार्जित होते-होते नैष्ठिक प्रयास के साथ ज्ञान के रूप में फलित होती है। रामकृष्ण परमहंस इसके एक नायाब उदाहरण थे, जो भक्तिमार्ग से ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँचे थे। इसी तरह विचारशील व्यक्ति ज्ञान के एकनिष्ठ बल के साथ भक्ति को पा जाता है। जीवन एवं इसके विराट् स्वरूप की समझ व्यक्ति में ईश्वरीय सत्ता के प्रति श्रद्धा-समर्पण भाव को जगाती है। आदि शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविंद इसी श्रेणी में आते हैं। तीसरे कर्मप्रधान व्यक्ति अपने नैष्ठिक कर्मों के साथ क्रमशः चित्तशुद्धि को प्राप्त होते हैं व ज्ञान एवं भक्ति के प्रसाद को पा जाते हैं। राजा जनक, तिलक जैसे कर्मयोगी इसके उदाहरण माने जा सकते हैं।

इस तरह श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा का कोई निश्चित क्रम नहीं कहा जा सकता। ये देश-काल-परिस्थिति व व्यक्ति की प्रकृति पर भी निर्भर करते हैं। भक्ति आंदोलन के दौर में जब पूरा समाज एक गहरे विषाद एवं निराशा के दौर से गुजर रहा था, तब श्रद्धा-भक्ति को प्रधानता दी गयी। सांस्कृतिक पुर्नजागरण के दौर में विवेक

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

एवं प्रज्ञा पर बल दिया गया और स्वतंत्रता संग्राम के दौर में कर्म को प्रधानता दी गयी। आज की परिस्थितियों में कहें, तो तीनों के समन्वय की आवश्यकता है- जब लोगों के जीवन शुष्क बुद्धिवाद, भोगवादी जीवनशैली के शिकंजे में घोर अनास्था के दौर से गुजर रहे हैं। छोटे-छोटे प्रलोभनों एवं स्वार्थों के लिए जनमानस बड़े लक्ष्य एवं आदर्श को तिलांजलि देने से गुरेज नहीं कर रहा, भले ही प्रकारान्तर से उसे अपनी करनी के लिए अच्छा-खासा खामियाजा ही क्यों न भुगतना पड़ रहा हो।

जीवन की आध्यात्मिक संभावनाओं के प्रति समझ का अभाव उसे बौने आदर्शों के साथ जुड़ कर ओछे निर्णय लेने के लिए विवश-बाध्य कर रहा है, जिसके कारण जीवन की उच्चतर संभावनाओं का द्वार नहीं खुल पाता। श्रद्धा एवं प्रज्ञा के अभाव में फिर उस निष्ठा का सवाल ही पैदा नहीं होता, जो राह के प्रलोभन, दबाव एवं विरोध के बावजूद व्यक्ति को निर्धारित लक्ष्य एवं आदर्श पर टिकने के लिए कटिबद्ध करे।

श्रद्धा ही वह बीज है, जिससे प्रज्ञा के प्रसून खिलते हैं, जो अडिग संकल्प के साथ लक्ष्यसिद्धि के द्वार तक जा पहुँचता है। श्रद्धा विशुद्ध रूप में एक आध्यात्मिक तत्व है, जिसे व्यावहारिक रूप में आदर्श एवं श्रेष्ठता के प्रति असीम प्रेम के रूप में समझा जा सकता है। यहीं से वह अटूट निष्ठा पैदा होती व अविचल समझ या प्रज्ञा विकसित होती है, जो व्यक्ति को तमाम भय, प्रलोभन एवं दबाव के बीच श्रेष्ठ मार्ग पर आरूढ़ रखती है।

युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी का जीवन-श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा की त्रिवेणी का पर्याय था, जिसे उन्होंने वैज्ञानिक अध्यात्म का नाम दिया, जो अपने वैज्ञानिक, व्यवहारिक एवं प्रगतिशील स्वरूप के कारण सर्वग्राह्य है व अपनी प्रासांगिकता के साथ हम सबके लिए वरेण्य है। आज आवश्यकता इसको स्वयं धारण करने की व इसके प्रचार की है, जिससे व्यक्ति, समाज एवं विश्व के वातावरण को विषाक्त करता आस्था संकट तिरोहित हो सके तथा उज्जवल भविष्य की संभावनाएँ शीघ्रातिशीघ्र साकार हो सकें। •

सामूहिक उपासना में बड़ी शक्ति है। एक समय पर एक मन से एकाग्र होकर की गई उपासना स्वर विज्ञान और शक्ति संचार के हिसाब से अद्भुत सामर्थ्य उत्पन्न करती है। इसलिए हम कहते रहते हैं कि गायत्री मंत्र एक साथ बोलिए। मंत्र एक साथ बोले जाते हैं। स्वर एक साथ होने चाहिए। हवन में भी हम साथ बोलने पर जोर देते रहते हैं।

एक समय पर एक साथ एक क्रम से की हुई उपासना का वह फल होता है जैसे कि लोहे के बड़े पुलों पर से होकर जब कभी सिपाही चलते हैं तो कदम मिलाकर लेफ्ट-राइट करने से उन्हें मना कर दिया जाता है; क्योंकि उससे पुल टूटने का खतरा रहता है। आप लोग सामूहिक रूप से एक साथ, एक ही समय, एक-सी ध्वनि, एक ताल-लय, एक नाद का उपयोग कर सकें, तो स्वरविद्युत् का एक बहुत बड़ा आधार विनिर्मित होगा और वातावरण के संशोधन का प्रयोजन पूरा करेगा।

- परमपूज्य गुरुदेव

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

श्यामा की अटल भक्ति

हुगली नदी के तट पर बसे एक गाँव में वर्षों पूर्व श्यामलदास सपरिवार रहते थे। पति, पत्नी व एक बच्ची- तीन लोगों का यही उनका एक छोटा सा परिवार था। सादगी, सज्जनता व विनम्रता के कारण श्यामलदासजी का पूरे गाँव में बड़ा ही समान था। गाँव में ही उनकी कुछ पैतृक जमीन थी जिस पर खेती-बाड़ी करके वे अपना जीविकोपार्जन किया करते थे। वे बड़े ही धर्मनि-ष्ठ व ईश्वरपरायण थे। उनका घर-आँगन सदा भगवद्भजन, संध्यावंदन व विष्णु सहस्रनाम के मधुर पाठ से गुंजायमान रहता था। वे दोनों पति-पत्नी प्रत्येक एकादशी को व्रत-उपवास किया करते थे। साथ ही वे प्रतिवर्ष भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा में शामिल होने जगन्नाथपुरी अवश्य ही जाया करते थे।

ऐसे ही धर्मनिष्ठ व ईश्वरपरायण दपत्ति के पावन आँगन में जन्माष्टमी की पावन वेला में एक बच्ची ने जन्म लिया। श्यामलदास जी ने अपनी बच्ची का नाम श्यामा रखा। श्यामा को दिव्य संस्कार तो अपने माता-पिता से मिले ही थे, पर श्यामा नैसर्गिक रूप से स्वयं भी बड़ी ही संस्कारी थी। भगवद्भजन, सुमिरन, कीर्तन में वह बचपन से ही बहुत रुचि रखती थी। जब उसके पिता अपने घर के कोने में रखे ठाकुर जी की आरती करते तो श्यामा भी स्वयं ही वहाँ आ अपनी तुतली बोली में ठाकुर जी की आरती गाने लगती थी। ध्यान करते हुये अपने पिता की गोद में वह बैठ जाती और थाल में ठाकुर जी के लिये रखे चंदन को वह स्वयं ही अपने ललाट पर लगा लिया करती थी।

अपनी पुत्री के ऐसे दिव्य संस्कार को देख माता-पिता भी बड़े हर्षित हो जाते। माता-पिता जब भी जगन्नाथपुरी जाते तो श्यामा भी वहाँ जाने की जिद अवश्य करती। वह लगभग हर वर्ष अपने माता-पिता के साथ भगवान जगन्नाथ जी के दर्शन करती। भगवान का दर्शन पा करके वह इतनी अभिभूत हो जाती कि मानो उसे संसार की सारी खुशियाँ मिल गई हों। जब वह जगन्नाथ जी के दर्शन कर बाहर मेले में घूमने जाती तो खिलौने की जगह भगवान जगन्नाथ जी की मूर्ति ही खरीदने की जिद किया करती। वास्तव में व्यक्ति जन्म के साथ अपने पूर्वजन्मों के संस्कार भी साथ लेकर आता है। पूर्वजन्म में यदि व्यक्ति ने ईश्वरभक्ति की है तो भक्ति के संस्कार स्वतः ही उसके साथ उसके अगले जीवन में भी आ जाते हैं।

श्यामलदास जी ये सारी बातें बखूबी समझते थे। सौभाग्य की बात यह थी कि श्यामा का जन्म ऐसे धर्मपरायण माता-पिता के यहाँ हुआ जहाँ उसके भक्ति के संस्कार को परिपक्व होने, फलने-फूलने के लिए अनुकूल उर्वर भूमि मिल चुकी थी। ऐसे ही दिव्य वातावरण में रहते हुये श्यामा बड़ी होने लगी, साथ ही उसकी ईश्वरभक्ति भी। समय-समय पर उसे दिव्य अनुभूतियाँ भी होने लगीं। स्वप्न में ठाकुर जी के दर्शन होने लगे। हृदय में ईश्वर के प्रति असीम प्यार उमड़ने लगा।

इस प्रकार देखते-देखते श्यामा किशोरावस्था को पार करती हुई बड़ी हो गई। माता-पिता को श्यामा की शादी की चिन्ता सताये जा रही थी। अगले ही वर्ष अपने गाँव से थोड़ी ही दूरी पर स्थित एक गाँव में श्यामलदास जी ने श्यामा की शादी कर दी। श्यामा की शादी के दो वर्ष बाद ही जगन्नाथपुरी में रहते हुये श्यामलदास जी एवं उनकी पत्नी नारायणी का निधन हो गया। अपने ससुराल में रह रही श्यामा के लिये यह दुःखद समाचार किसी वज्राघात से कम नहीं था, परंतु होनी को कौन टाल सकता है? समय के साथ-साथ श्यामा भी सामान्य हो चली। श्यामा के पति का नाम श्वेताम्बर था। श्यामा की सास भी उसके साथ रहती थी। उसकी सास बहुत ही क्रूर थी। वह श्यामा को तरह-तरह से प्रताड़ित किया करती थी। कभी-कभी तो उसे भूखा भी रखती थी।

श्यामा की ठाकुर जी के प्रति भक्ति, प्रेम उसे फूटी आँखों न सुहाते थे। इसलिये वह श्यामा को सुबह से शाम तक काम में उलझाये रखती थी। सारा काम करवा कर भी वह श्यामा को डाँटती रहती थी। श्यामा इसे अपना प्रारब्ध समझ कर चुपचाप

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

सह लिया करती थी। दिन में तो उस पर सास का पहरा होता था, इसलिये वह दिन के बजाय रात्रि में भगवान विष्णु का मन ही मन नाम, स्मरण, पूजन कर लिया करती थी। उसके मुख पर सदा ठाकुर जी का ही नाम रहता था। ठाकुर जी का नामस्मरण, ध्यान करते हुये ही वह प्रायः निद्रा की गोद में चली जाती थी। एक दिन वह गगरी में पास की नदी से पानी भरने गई हुई थी, कि तभी उसने देखा कि नदी किनारे से संतों की एक मंडली हरिकीर्तन करते हुये जा रही है। उस कीर्तन को सुनते ही श्यामा के पवित्र अंतःकरण में भी हरि-प्रेम की लहरें उठने लगीं और देखते ही देखते वह समाधि की अवस्था में चली गई। संतों की मंडली में एक सिद्ध संत भी थे। उन्होंने श्यामा को देखते ही उसकी उच्च आध्यात्मिक स्थिति को भाँप लिया।

जब श्यामा होश में आयी तो संतों ने उसकी उच्च आध्यात्मिक स्थिति की काफी सराहना की। साथ ही कहा कि हम सभी भगवान जगन्नाथ जी के दर्शन को जा रहे हैं। यदि तुम चाहो तो तुम भी संतों की मंडली में चल सकती हो। श्यामा ने कहा-'मैं जगन्नाथपुरी अवश्य जाऊँगी।' यह निश्चय कर श्यामा ने अपनी गगरी पड़ोसन को देकर घर जाने के लये कहा और वह संत मंडली के साथ आगे बढ़ने लगी। वह भगवद्नाम संकीर्तन करते हुये भावविभोर हो रही थी। उधर जब श्यामा की सास ने श्यामा के बारे में यह सब जाना-सुना तो वह आग-बबूला हो गई।

उसने तुरंत अपने पुत्र को भेजकर श्यामा को वापस घर लाने की आज्ञा दे दी। उसके पति ने उसे घर लाकर कमरे में बंद कर दिया। श्यामा को इस बात का दुःख होने लगा कि अब वह जगन्नाथ भगवान के दर्शन नहीं कर पायेगी। उसने भगवान का नामस्मरण प्रारंभ किया। मध्यरात्रि में व्याकुल होकर वह भगवान को मन ही मन पुकारने लगी और उसी भावावस्था में सो गई। श्यामा की निश्छल एवं अटूट भक्ति देखकर भगवान जगन्नाथ जी अपने प्रकाश रूप में श्यामा के स्वप्न में प्रकट हुये।

भगवान के दिव्यरूप का दर्शन पाकर श्यामा अभिभूत हो उठी, पुलकित हो उठी। उसकी असीम भक्ति उसके आँखों से आँसू बन कर झरने लगे। भगवान जगन्नाथजी ने उसके सिर पर हाथ रखते हुये कहा- 'पुत्री! तुम्हारी निश्छल भक्ति को देखकर मैं तुम पर अति प्रसन्न हूँ। तुहें क्या चाहिये?' श्यामा ने कहा- 'भगवन! हर जन्म में मुझे आपकी भक्ति प्राप्त हो, मुझे बस यही चाहिये।' भगवान, तथास्तु कहकर अंतर्ध्यान हो गये।

उधर उसी रात्रि में भगवान ने स्वप्न में उसकी सास और पति को श्यामा के साथ बुरा बर्ताव न करने की चेतावनी दी। स्वप्न में भगवान के भयंकर रूप को देखकर उसकी सास और पति दोनों भयभीत हो गये और उन दोनों ने श्यामा को बंद कमरे से निकाला और उसे जगन्नाथपुरी जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। स्वप्न में भगवान का दर्शन पाकर उसके सास व पति को भी भगवान जगन्नाथ जी के दर्शन करने की इच्छा जाग्रत हो गई। इस प्रकार तीनों ही भगवान जगन्नाथ जी के दर्शन को जगन्नाथपुरी की ओर चल पड़े। भगवान अपने भक्त की भक्ति का सदा मान रखते हैं। •

भगवान कृष्ण ने महाभारत के उपरान्त हुए राजसूय यज्ञ में आग्रहपूर्वक आगन्तुकों के पैर धोने का काम अपने जिम्मे लिया था और सज्जनोचित विनम्रता का परिचय दिया था। गांधीजी कांग्रेस के पदाधिकारी नहीं रहे; किन्तु फिर भी सबसे अधिक सेवा करने और मान पाने में समर्थ हुए। राम, भरत में से दोनों ने राजतिलक की गेंद एक दूसरे की ओर लुढ़काने में कोर-कसर न रहने दी। चाणक्य झोंपड़ी में रहते थे; ताकि राजमद उनके ऊपर न चढ़े और किसी साथी के मन में प्रधानमंत्री का ठाटबाट देखकर वैसी ही ललक न उठे। राजा जनक हल जोतते थे। बादशाह नसीरुद्दीन टोपी सीकर गुजारा करते थे। ये वे उदाहरण हैं, जिनसे साथियों को अधिक विनम्र और संयमी बनने की प्रेरणा मिलती है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

राष्ट्ररक्षा के संकल्प का पर्व है रक्षाबंधन

रक्षाबंधन राष्ट्र की रक्षा के संकल्प का पर्व है। यह भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का महान पर्व है। रक्षाबंधन का आरंभ कब हुआ, इस विषय में कुछ निश्चित तो नहीं कहा जा सकता लेकिन भविष्य पुराण में वर्णन मिलता है कि देवों और दानवों में जब युद्ध शुरू हुआ तब दानव, देवताओं पर भारी पड़ते नजर आने लगे। तब इंद्र घबड़ाकर बृहस्पति जी के पास गए। बृहस्पति जी के निर्देशानुसार इंद्र की पत्नी शची ने रेशम का धागा मंत्रों की शक्ति से पवित्र करके अपने पति की कलाई पर बाँध दिया। संयोग से यह श्रावण पूर्णिमा का दिन था। जनविश्वास यह बना कि देवासुर संग्राम में इंद्र इसी धागे की मंत्रशक्ति से ही विजयी हुए। ऐसा माना जाता है कि उसी दिन से श्रावण पूर्णिमा के दिन रक्षाबंधन को धागा बाँधने की प्रथा प्रारंभ हुई, जो आज तक विभिन्न नाम और रूप से देश-विदेश में चलती आ रही है।

इतिहास के शानदार पृष्ठों से भी राखी का संबंध है। राजपूताने की राखी वैसे तो बहुत प्रसिद्ध है और कई वीरगाथाएँ इसके साथ जुड़ी हैं पर महारानी कर्मावती के धागे की कथा विशेष प्रसिद्ध है। मेवाड़ की रानी कर्मावती पर जब बहादुर शाह ने आक्रमण कर दिया तो वीरता से शत्रुओं का सामना करते हुए कर्मावती ने हुमायूँ को राखी भेज कर मदद की प्रार्थना की। हुमायूँ ने राखी की लाज रखी और मेवाड़ पहुँच कर बहादुर शाह के विरुद्ध युद्ध किया तथा राज्य की रक्षा की। दक्षिण भारत के धर्मग्रंथों और महाभारत में भी किसी न किसी रूप में राखी का उल्लेख है। स्वतंत्रता संग्राम का राखी से जुड़ा विशेष प्रसंग सन् 1905 के बंग-भंग आंदोलन से है। जब लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का फैसला कर ही लिया तब पूरा बंगाल एकमत से बंग-भंग के विरुद्ध खड़ा हो गया और तब जनजागरण के लिए रक्षाबंधन का ही सहारा लिया गया।

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बंग-भंग का विरोध करते हुए रक्षाबंधन त्यौहार को बंगाल निवासियों के आपसी भाईचारे तथा एकता का प्रतीक बनाकर इस पर्व का देश की आजादी के लिए उपयोग किया। 16 अक्टूबर 1905 को बंग-भंग की नियत घोषणा के दिन रक्षाबंधन की योजना साकार हुई और इसी धागे के सहारे आमजन गंगास्नान करके सड़कों पर यह कहते हुए उतर आए-

सप्त कोटि लोकेर करुण क्रंदन,
सुनेना सुनिल कर्जन दुर्जन,
ताइ निते प्रतिशोध मनेज मतन
करिल, आमि स्वजने राखी बंधन।

ऐसा कहते हुए बंगालवासियों द्वारा यह आह्वान किया गया कि आओ राखी के बंधन में बँधकर हम कर्जन के अत्याचारों का सामना करें।

आज अधिकतर लोग, परिवार और बहनें रक्षाबंधन को भाई-बहन के प्यार का पर्व मानकर ही मानते हैं। कहा जाता है कि कच्चे धागे से पक्के रिश्ते बनते हैं। कोई अपरिचित भी राखी बँधवा दे तो वह जीवनभर के लिए भाई-बहन का रिश्ता निभाते हैं। इस दिन बहनें अपने भाई की कलाई पर रक्षासूत्र बाँधकर आशीर्वाद देती हैं और भाई भी अपनी बहनों को उपहार आदि देकर जीवन भर यह संबंध प्यार और संरक्षण से निभाने का प्रण लेते हैं। परंतु धीरे-धीरे यह त्यौहार प्यार के साथ औपचारिकता भी बन गया और महंगे उपहार देने-लेने और दिखावे का एक साधन बन गया। विवाहिता लड़कियों के माता-पिता को तो राखी पर भी महंगा उपहार ही देना पड़ता है। जो भी है यह भारत की पहचान है। भाई-बहन के संबंधों को सशक्त बनाता धागा ही त्यौहार है।

देश की सभी बहन-बेटियों से और राखी बँधवाने वाले भाइयों से यह निवेदन है कि राखी नोटों का त्यौहार नहीं, गहने और कपड़े लेने-देने का अवसर नहीं, यह सिरों का सौदा है। हमारी राखी में इंद्राणी की राखी जैसी शक्ति है, महारानी कर्मावती की राखी जैसा संदेश है और बंगाल के भाई-बहनों के राष्ट्रहित में किए

‘गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना’ वर्ष

गए आंदोलन की भी चमक अपनी राखी में है। अंग्रेजों के विरुद्ध जितने अभियान स्वतंत्रता के लिए चलाए गए उसमें पहला बंग-भंग ही है जो लॉर्ड कर्जन के अत्याचारों के बाद भी सफल हुआ और बंगाल का विभाजन रुक गया। रक्षाबंधन के दिन महान स्वतंत्रता सेनानी और कवियित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की राखी की चुनौती भला कौन भूल सकता है? सुभद्रा कुमारी ने देश के बेटों से सीधा प्रश्न किया था-

आते हो भाई, पुनः पूछती हूँ
कि माता के बंधन की है लाज तुमको
तो बन्दी बनो देखो, बंधन है कैसा
चुनौती यह राखी की है आज तुमको।

आज देश की बेटियाँ भी सेना में सशक्त प्रहरी हैं। सीमा सुरक्षा बल और देश के अन्य सभी बलों में सेवा कर रही हैं। राखी बाँधते समय ध्यान रखना होगा कि यह रक्षाबंधन है, भारत का बेटा या बेटी जो भी शस्त्र हाथ में लिए देश की रक्षा के लिए सिर देने को तैयार बैठा है, उन सबके लिए राखी है, केवल बहन की राखी भाई के लिए नहीं, बहादुर बहनों के लिए भी है। आइए राष्ट्र की रक्षा के संकल्प के साथ राखी मनाएँ। हमारी राखी पिछले पचास वर्षों से वीर भाई-बहनों के साथ बंधकर शान से मुसकरा रही है।

• • •

प्राचीन काल में गुरु अपने शिष्यों को विद्याध्ययन के साथ-साथ अनुशासन, शिष्टाचार, क्षमाशीलता, धैर्य आदि सद्‌गुणों की भी शिक्षा दिया करते थे। उस समय यह विश्वास था कि विद्या के समान ही चरित्र भी आवश्यक है और उसके विकास पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। ऋषि धौम्य के आश्रम में कितने ही छात्र पढ़ते थे। वे उन्हें पूरी तत्परता के साथ पढ़ाते, साथ ही सद्‌गुणों की वृद्धि हुई कि नहीं, इसकी परीक्षा भी लेते रहते थे।

एक दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। गुरु ने अपने छात्र आरुणि से कहा- बेटा! खेत में मेढ़ टूट जाने से पानी बाहर निकला जा रहा है। तुम जाकर उसे बाँध आओ। आरुणि तत्काल उठ खड़ा हुआ और खेत की ओर चल दिया। पानी का बहाव तेज था, इसलिए आरुणि रुका नहीं। कोई उपाय न देख वह स्वयं उस स्थान पर लेट गया। इस प्रकार पानी रोके रहने में उसे सफलता मिल गयी।

बहुत रात बीत जाने पर भी जब वह न लौटा तो ऋषि धौम्य को उसकी चिंता हुई। वे अन्य शिष्यों को साथ में लेकर उसे खेत पर ढूँढने पहुँचे। देखा तो छात्र पानी को रोके मेढ़ के पास पड़ा है। बहुत देर तक ठंढा पानी जाने के कारण वह अचेत हो गया था। ऋषि धौम्य उसे उठाकर वापस आश्रम लाए। उसका समर्पण देखकर उनकी आँखें भर आयीं। उन्होंने उसको स्वास्थ्य लाभ कराने के उपरांत अपने गले लगाया और बोले- वत्स! तुहारा समर्पण प्रशंसनीय है। आज से तुम उद्दालक के नाम से जाने जाओगे। आरुणि के समर्पण की कथा आज भी अनेको के लिए प्रेरणा का कार्य करती है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

समस्याओं को देखने का बदलें नजरिया

जीवन में हम सभी हर दिन कई तरह की समस्याओं का सामना करते हैं; लेकिन समस्याओं की परिभाषा, मायने हर किसी के लिए अलग-अलग हो जाते हैं। किसी के लिए कोई समस्या छोटे रूप में है, तो किसी के लिए बड़े रूप में। किसी के लिए समस्या एक चुनौती है तो किसी के लिए समस्या एक जटिल पहेली, जिसे सुलझा पाना संभव न हो। किसी के लिए समस्या किसी आविष्कार से जुड़ी है, तो किसी के लिए समस्या उस द्वार के समान है, जो बंद है और जिसे खोलना मुश्किल है। समस्या किसी को राई के समान छोटी व सरल प्रतीत होती है, तो किसी के लिए समस्या पहाड़ के समान बड़ी व जटिल होती है।

समस्या को देखने का नजरिया ही वह बात है, जिसके कारण कोई समस्या हमें विविध रूपों में नजर आती है। समस्या को सुलझा लेना ही हमारी योग्यता को प्रमाणित करता है कि हममें कितना हुनर है, कितनी प्रतिभा है। कई बार हमारे सामने जीवन की कोई परिस्थिति इसलिए समस्या के रूप में नजर आती है; क्योंकि हम उसे जागरूकता के साथ देख नहीं पाते।

यदि मनोवैज्ञानिक शोधों की बात की जाए, तो हर परिस्थिति चाहे वह हमें अनुकूल लगे या प्रतिकूल, वह हमारी क्षमता को बढ़ाने के लिए एक अवसर प्रदान करती है। महान दार्शनिक अरस्तू ने कहा था कि परेशानी या समस्या का सार्थक मतलब उसे लेकर चिन्तित होना नहीं है, बल्कि अपनी संपूर्ण ऊर्जा के साथ उस समस्या को सुलझाना तथा उस पर कार्य करना है।

हमारा यह जीवन एक दर्पण की तरह है और इस जीवन में हमें अच्छे परिणाम तभी मिलते हैं, जब हम इसे देखकर मुसकराते और खिलखिलाते हैं। यहाँ पर सरलता हमारी अटूट ताकत बनकर सामने आती है और यही हमारी हजारों अड़चनें कम कर देती है। इसलिए मनुष्य को अपने अहंकार व नफरत से परे सादगीपूर्ण रवैया अपनाते हुए आगे बढ़ना चाहिए। सामान्य सी बात है कि अपनी इच्छा व अपने सपनों के हिसाब से हर व्यक्ति में जीने की चाहत होती है लेकिन हमारा परिवेश इसकी हमें इजाजत दे, यह जरूरी नहीं। जब हमारे भीतर सरलता नहीं होती, तो हम जीवन को कठिन से कठिनतर बनाते चले जाते हैं, जिनमें हमारे नकारात्मक विचार सबसे अधिक मददगार होते हैं। सरलता न होने पर हम न सिर्फ स्वयं को नकारात्मक विचारों से भरते रहते हैं, बल्कि सामने वाले व्यक्ति को भी अपनी नकारात्मकता से प्रभावित करते हैं। अतः हमें इनसे बचना चाहिए।

हम सकारात्मकता से तभी जुड़ सकते हैं, जब हम सरल होते हैं, शुभ विचार करते हैं और सबके बारे में अच्छा सोचते हैं। जीवन के प्रति सकारात्मक नजरिया वह द्वार होता है, जो हमारे जीवन में अनेक संभावनाओं को साकार करने में सहायक होता है। यह वह द्वार होता है, जो कभी बंद नहीं होता। यह वह द्वार होता है, जहाँ पर प्रकाश ही प्रकाश होता है और इसके कारण हमारे जीवन में विविध तरह की रचनात्मकता घटित होती है, लेकिन यह द्वार तब बन्द होने लगता है, जब हम नकारात्मकता से अपना सबन्ध जोड़ने लगते हैं।

नकारात्मकता, नकारात्मक विचारधारा, नकारात्मक दृष्टिकोण, नकारात्मक प्रवृत्ति यदि किसी भी रूप में हमारे जीवन में प्रवेश कर जाती है और अपनी जड़ें मजबूती से जमाने लगती है, तो हमारे जीवन में इनके कारण अंधकार फैलने लगता है। ऐसे में हमारे जीवन में आगे बढ़ने के रास्ते दिखने बंद हो जाते हैं। इस नकारात्मकता के कारण कोई भी परिस्थिति हमारे लिए एक भयावह समस्या प्रतीत होती हैं और हमें जीवन में आगे बढ़ने से भी डर लगने लगता है।

इस नकारात्मकता के कारण हम अपनी जड़ों को काटने व खोखला करने लगते हैं और दूसरे व्यक्ति की जड़ों को भी काटने की कोशिश करने लगते हैं और यही कारण है कि जब

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

नकारात्मकता व्यक्ति के ऊपर बुरी तरह से हावी हो जाती है तो वह व्यक्ति हताश हो जाता है, जीवन से निराश हो जाता है, उदासी के घने कुहासे से घिर जाता है, अवसाद के चंगुल में बुरी तरह से फँसने लगता है और कभी-कभी इसका भयानक परिणाम यह सामने आता है कि वह अपने जीवन को ही समाप्त कर लेता है।

हमेशा यह देखा गया है कि आत्महत्या वही व्यक्ति करता है, जो नकारात्मकता से बुरी तरह से घिर जाता है। जो व्यक्ति सकारात्मक है, वह कभी भी आत्महत्या नहीं करता; क्योंकि उसके सामने जीवन में आगे बढ़ने के लिए बहुत सारे मार्ग होते हैं, सकारात्मक सोच के कारण उसके जीवन में इतनी प्रसन्नता व आनंद होते हैं कि वह इनके कारण खिलखिलाता रहता है और दूसरों को भी हँसाता है।

सकारात्मक व्यक्ति के संपर्क में यदि नकारात्मक व्यक्ति आता है, तो वह अपने संपर्क से उसे भी सकारात्मकता का कुछ न कुछ उपहार जरूर दे देता है। यदि आत्महत्या करने के इच्छुक व्यक्ति के समीप भी कोई सकारात्मक ऊर्जा से भरपूर व्यक्ति आ जाए, तो उसके आने मात्र से, उसकी उपस्थिति मात्र से आत्महत्या करने वाले व्यक्ति के विचारों में कुछ ऐसा बदलाव होता है कि वह अपनी आत्महत्या के विचार को छोड़ देता है। इस तरह नकारात्मकता जहाँ व्यक्ति के जीवन को बुरी तरह से तहस-नहस करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ती; वहीं सकारात्मकता व्यक्ति के जीवन को सुलझाने व सँवारने में कोई कमी नहीं रहने देती।

जीवन में आने वाली समस्याएँ तो जीवन को निखारने, उसे बेहतर बनाने के लिए ही सामने आती हैं, लेकिन हमारी नकारात्मकता उनका हल खोजने के बजाय उनको और जटिल बनाती हैं और इतना जटिल बनाती हैं कि व्यक्ति उनको हल करना ही नहीं चाहता; जबकि सकारात्मकता उन समस्याओं को इतना सरल रूप दे देती है कि उन्हें आसानी से हल करने का मार्ग मिल जाता है और फिर समस्या, कोई जटिल पहेली नहीं; बल्कि रुचिकर पहेली बन जाती है, जिसे हल करने, सुलझाने का मन करता है और इससे मन उत्साहित होता है।

इस तरह सरलता का सबन्ध जहाँ सकारात्मकता से है, वहीं जटिलता का सबन्ध नकारात्मकता से है। सकारात्मक नजरिये के साथ जहाँ जटिल से जटिल समस्या भी सरल रूप में सुलझायी जा सकती है तो वहीं नकारात्मक नजरिये के साथ सरल से सरल समस्या भी जटिलता में परिवर्तित हो जाती है। इसलिए हमें सरल बनने का प्रयास करना चाहिए और सकारात्मकता से अपना नाता जोड़ना चाहिए, न कि जटिल बनते हुए नकारात्मकता से जुड़ना चाहिए। चुनाव हमें ही करना है कि हम सरल बनना चाहते हैं या जटिल। हम नकारात्मकता के भँवर में फँसना चाहते हैं या सकारात्मकता के प्रकाश को पाना चाहते हैं।

• • •

एक आदमी ने चिड़िया के बच्चे पकड़े और दरी में लपेट दिए। चिड़िया तड़पी। आदमी ने दरी को खोला तो चिड़िया उन बच्चों से लिपट गई। आदमी ने चिड़िया को भी बच्चों सहित दरी में बाँध लिया। इन्हें लेकर वह हजरत के पास पहुँचा और पूछा- 'इन परिन्दों का क्या करूँ?' रसूलिल्लाह ने कहा- 'ऐ नेकबत! रहम करना सीख और इन्हें वहीं छोड़कर आ जहाँ से इन्हें पकड़ा है। ऐ इनसान! आज जिस बेरहमी का इस्तेमाल तू परिन्दों के लिए कर रहा है वही बेरहमी अपनी कौम के साथ भी बरतने लगेगा। रहम सीख तो ही इनसानियत बचेगी, इनसानियत न बची तो इनसान भी न बचेगा।' वास्तव में मनुष्य अपने नियन्ता से भी चालाकी करके अपने हिस्से में दुर्भाग्य को बुला बैठा है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

मुझको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में

कस्तूरीमृग के शरीर में एक विशेष ग्रंथि होती है जिससे एक खुशबू निकलती है। कस्तूरीमृग मुय रूप से दक्षिणी एशिया के पहाड़ों में, विशेष रूप से हिमालय के वनाच्छादित क्षेत्रों में निवास करते हैं। अपनी आकर्षक खूबसूरती के साथ-साथ यह जीव अपनी नाभि से निकलने वाली खुशबू के लिए मुख्य रूप से जाना जाता है।

दरअसल इस मृग की नाभि में गाढ़ा तरल पदार्थ (कस्तूरी) होता है जिससे मनमोहक खुशबू की धारा बहती है पर मृग को यह पता ही नहीं होता कि यह मनमोहक खुशबू जिससे वह मदमस्त हुआ फिरता है, कहीं और से नहीं; बल्कि उसकी ही नाभि से निकल रही है। परिणामतः वह अपनी ही नाभि से निकल रही मनमोहक खुशबू की खोज में वन-वन भटकता फिरता है; पर उसे कहीं भी उसका स्रोत दिखाई नहीं पड़ता और इस प्रकार वह जीवन भर कस्तूरी की खोज में बाहर ही भटकता रहता है।

मनुष्य की हालत भी तो उस कस्तूरी मृग जैसी ही है क्योंकि आत्मा के रूप में स्वयं परमात्मा ही मनुष्य के शरीर में विराज रहे हैं; पर मनुष्य उसी परमात्मा की खोज में उस मृग की भाँति ही वन-वन भटक रहा है। सर्वव्यापी परमात्मा तो ब्रह्माण्ड के कण-कण में विराजमान हैं। वह परमात्मा हर मनुष्य के अंदर भी विराजमान हैं; पर अज्ञानतावश मनुष्य परमात्मा को स्वयं के भीतर देखने के बजाय बाहर ही ढूँढ़ने में लगा है। संत कबीर के प्रस्तुत दोहे में भी कुछ ऐसी ही भाव-प्रेरणाएँ गुँजरित हो रही हैं-

कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूँढ़त बन माहि।
ज्यों घट-घट में राम हैं दुनिया देखत नाहिं॥

हमने ईश्वर को कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ा? हमने उन्हें तीर्थों में, देवालयों में, वनों में, गुफाओं में, कंदराओं में ढूँढ़ा। हमने उन्हें मंदिर-मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारे आदि में भी ढूँढ़ा। हमने उन्हें काबा, कैलाश आदि में भी खूब ढूँढ़ा पर अब तक हम खाली हाथ ही रहे। अब तक उनके दर्शन से ही वंचित रहे; पर क्या हमें सचमुच ईश्वर को कहीं ढूँढने की जरूरत है? प्रस्तुत दोहे में संत कबीर ने हमारी इसी स्थिति, मनःस्थिति को प्रकट किया है, साथ ही एक सार्थक समाधान भी दिया है-

मोको कहाँ ढूँढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना तीरथ में, ना मूरत में, ना एकान्त निवास में॥
ना मंदिर में ना मस्जिद में, ना काबे कैलाश में।
मैं तो तेरे पास में बन्दे, मैं तो तेरे पास में॥
ना मैं जप में, ना मैं तप में, ना मैं बसत उपास में।
ना मैं किरया करम में रहता,
नहिं जोग सन्यास में॥
नहिं प्राण में, नहिं पिंड में, ना ब्रह्माण्ड आकाश में।
ना मैं प्रकृति प्रवार गुफा में,
नहिं स्वासों की स्वास में।
खोजि होए तुरंत मिल जाऊँ,
इक पल की तलास में॥
कहत कबीर सुनो भई साधो मैं तो हूँ विश्वास में।

उपदेश, व्याख्यान, भाषण आदि का समाज पर प्रभाव अवश्य पड़ता है, किन्तु वह क्षणिक होता है। किसी भी भावी क्रान्ति, सुधार, रचनात्मक कार्यक्रम के लिए प्रारभ में विचार ही देने पड़ते हैं; किन्तु सक्रियता और व्यवहार का संस्पर्श पाये बिना उनका स्थायी और मूर्त रूप नहीं देखा जा सकता। विचार और क्रिया के समन्वय से ही युग निर्माण के महान कार्यक्रम की पूर्ति संभव है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

वास्तव में संत कबीर कहना चाहते हैं कि यदि हममें श्रद्धा, विश्वास है तो ईश्वर हमसे कहाँ दूर हैं तब तो वे हमें हमारे पास में ही दिख जायेंगे और यदि श्रद्धा-विश्वास नहीं है, तो वे हमें मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारे, वन-उपवन आदि कहीं भी नहीं दीख सकेंगे। हालाँकि वे सर्वत्र ही हैं ।

जैसे गहन अँधेरे में दूर की कौन कहे, हमें अपने पास की वस्तु भी दिखाई नहीं देती; पर जैसे ही पूरब दिशा से उषा की लाली प्रकट होती है वैसे ही हमें हर चीज दिखाई पड़ने लगती है। वैसे ही ईश्वर को हम देख तो सकते हैं, पर स्थूल आँखों से नहीं, अपने मन की आँखों से, ज्ञान की आँखों से, श्रद्धा-विश्वास की आँखों से, प्रेम की आँखों से। नवनीत दूध में दीखता कहाँ है? पर जैसे ही दूध की मथाई शुरू हुई, वैसे ही उसी दूध से नवनीत प्रकट हो उठता है। पत्थरों में आग दिखती नहीं पर उसे घिसते ही उनसे चिनगारी निकल उठती है। माचिस की तीली में बारुद है, उसमें आग भी है पर अभी अप्रकट है; पर उसके घिसते ही बारूद से अग्नि निकलकर धधक उठती है किन्तु हमारी तो कथा-व्यथा ही अलग है।

हमें दूध से नवनीत निकालना तो है पर बिना दूध को मथे हुये। हमें पत्थरों से चिनगारी निकालनी तो है पर उन्हें बिना घिसे हुये। हमें बारूद से आग निकालनी तो है पर उसे बिना घर्षित किये हुये। हमें ईश्वर को मंदिरों में, गिरजाघरों में, गुरुद्वारों में, काबा में, कैलाश में, तीर्थों में, ब्रह्माण्ड में, देखना तो है; पर ज्ञान नहीं अज्ञान की आँखों से, श्रद्धा-विश्वास नहीं, अश्रद्धा-अविश्वास की आँखों से, प्रेम और पवित्रता नहीं; अप्रेम और अपवित्रता की आँखों से।

मीरा का सच्चा प्रेम ही मूर्ति से निराकार ब्रह्म को साकार रूप में प्रकट कर देता था। इसलिये मीरा ब्रह्म को सिर्फ मूर्तियों में ही नहीं; ब्रह्मांड के कण-कण में देखा करती थी। उनके होने की अनुभूति किया करती थी। रामकृष्ण परमहंस की निश्छल भक्ति भी इसीलिये पत्थर की मूर्ति से भी निराकार ब्रह्म को प्रकट किया करती थी। वे मूर्तियों में ही नहीं; यत्र-तत्र-सर्वत्र उसी ब्रह्म को ज्ञान की आँखों से देखा करते थे, और अपने अंर्तमन में हर पल उसी ब्रह्म की अनुभूति किया करते थे।

इस प्रकार संत कबीर अपने ज्ञान की आँखों से ही हर पल निराकार ब्रह्म की अनुभूति किया करते थे। श्रद्धा-विश्वास की आँखों से ही संत तुलसीदास अपने आराध्य राम को हर पल अपने अंतर्मन में अनुभव किया करते थे। अपनी अखंड श्रद्धा, भक्ति के कारण ही परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी हर पल आदिशक्ति गायत्री के रूप में परब्रह्म परमेश्वर की अनुभूति किया करते थे।

आर्यावर्त की इस पुण्य धरा पर ऐसे योगियों, ऋषियों, मनीषियों की एक लंबी शृंखला व परपरा रही है- जिन्होंने अपनी प्रचंड तप साधना, योग साधना के बल पर साकार या निराकार रूप में परब्रह्म परमेश्वर की अनुभूति की है। अस्तु; यह मार्ग हमारे लिये भी सुलभ है पर हाँ! इसके लिये हमें स्वयं के आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया पूरी करनी ही होगी; क्योंकि इसका कोई सरल मार्ग है ही नहीं। शॉर्टकट मार्ग अपनाने और आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया पूरी नहीं करने के कारण ही हम अब तक आत्मसाक्षात्कार, ईश्वरानुभूति आदि योग-अध्यात्म के वास्तविक प्रतिफल से वंचित रहे हैं और जिस दिन हमने सचमुच अपने आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया पूरी कर ली, उस दिन हम भी परब्रह्म परमेश्वर को अपनी आत्मज्योति के रूप में देख सकेंगे।

आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया पूर्ण होते ही हमारे अंतस में ब्रह्मज्योति प्रकट होगी और उस ज्योति के प्रकट होते ही हमारे अंतस में भी करुणा, प्रेम, संवेदना की ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगेंगी। तब हमें मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में स्वयं के भीतर और बाहर भी उसी एक सर्वव्यापी परमेश्वर की अनुभूति होने लगेगी। श्रीरामकृष्ण परमहंस के शब्दों में कहें तो हृदय में प्रेम और पवित्रता के अवतरित होते ही हमारे हृदय में ही परब्रह्म परमेश्वर सदा-सदा के लिये उतर आयेंगे; क्योंकि भक्त का प्रेम भरा हृदय ही भगवान का बैठकखाना है, निवास स्थान है।

इस संबंध में परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने भी कितनी मार्मिक और सारगर्भित भाव प्रेरणाएँ दी हैं-'ईश्वर सद्गुणों का, सत्प्रवृत्तियों का, श्रेष्ठताओं का समुच्चय है और जो इसे अपने अंदर जिस परिणाम में उतारता चला जाता है, वह उतना ही ईश्वरत्व से अभिपूरित होता चला जाता है।' यदि हम ऐसा

सचमुच कर सकें, तो सचमुच हमारे लिये हमारा मन ही मक्का, हृदय द्वारिका और काशी काया बन जायेगी, जिसमें हम हर पल अपने आराध्य की अनुभूति कर सकेंगे।

जैसा कि संत कबीर ने कहा है-

मैं जानूँ हरि दूर है, हरि है हृदय माहिं।
आरी टाटि कपट की, तासै दीखत नाहिं॥
परदेश खोजन गया घर हीरा की खान।
काँच मनी का पारखी, क्यों पावे पहिचान॥
मन मक्का, दिल द्वारका, काया कासी जान।
दस द्वारै का देहरा, तामै ज्योति पीछान।।

अर्थात् मुझे तो जान पड़ता था कि प्रभु बहुत दूर हैं पर मैंने अब जाना कि प्रभु तो मेरे हृदय में ही हैं। जब तक छल-कपट का परदा पड़ा था, तब तक वे हमें दिखाई नहीं पड़ रहे थे। मैं अपने प्रभु को खोजने दूर देश गया परंतु हीरे की खान तो घर में ही थी। शीशे के आभूषण का पारखी उसे कैसे पहचान पाता। सांसारिक विषयों में लिप्त व्यक्ति प्रभु को कैसे जान व पहचान सकता है? अब मुझे समझ आया कि यदि अंतःकरण पवित्र हो तो अपना मन ही मक्का, हृदय ही द्वारिका और अपनी काया ही काशी है। यह शरीर दस द्वारों का है जिसके अंतरतम हृदय में ही प्रभु का वास है। उसे यहीं ढूँढ़ने में सार्थकता है।

• • •

कौरवों की राजसभा लगी हुई थी। एक कोने में पांडव भी बैठे हुए थे। दुर्योधन की आज्ञा पाकर दुःशासन अपने स्थान से उठा और द्रौपदी को घसीटता हुआ राजसभा में ले आया। विवेकशीलों को पता था कि वहाँ पर अधर्म घट रहा है। द्रौपदी अपने साथ होने वाले अपमान से दुःखी हो उठी। उसके सामने दुष्ट दुःशासन चीरहरण के लिए आ खड़ा हुआ। द्रौपदी ने सभा में उपस्थित सभी गणमान्यों, पितामहों को रक्षा के लिए पुकारा; किंतु दुर्योधन के भय से और उसका नमक खाकर जीने वाले कैसे उठ सकते थे?

द्रौपदी ने भगवान को पुकारा तो अंतर्यामी कृष्ण दौड़े आए कि आज भक्त कठिनाई में है। द्रौपदी को दर्शन दिया और पूछा- कभी किसी को वस्त्र दिया हो, तो याद करो। द्रौपदी को एक घटना याद आयी और वह बोली- भगवन्! एक बार पानी भरने गयी थी तो स्नान करते हुए ऋषि का वस्त्र नदी में बह गया था, तब अपनी साड़ी में से आधी फाड़ कर उन्हें दी थी। भगवान कृष्ण बोले- द्रौपदी! अब चिंता न करो, तुहारी रक्षा हो जाएगी। जितनी साड़ी दुःशासन खींचता गया, उतनी ही बढ़ती गयी। दुःशासन हारकर बैठ गया; किंतु साड़ी का ओर-छोर ही नहीं आया।

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकते। मनुष्य के कर्मों के खाते में यदि कुछ जमा हो तभी उनकी सहायता संभव हो पाती है।

मनोग्रंथियों को खोलें- खुश रहें

मन में बैठी हुई परेशानी यदि बाहर आ जाए, तो मन हलका हो जाता है; लेकिन यदि वही परेशानी मन की चहारदीवारी में कैद होकर रह जाए, तो उसका मन पर कैसा असर होगा? उसका क्या परिणाम होगा? किस तरह का मनोरोग उससे पनपेगा? उसके घाव मन पर कितने गहरे होंगे? कहा नहीं जा सकता।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो मन की स्मृतियों के तहखाने में न जाने कितनी कड़वी बातें, गाँठें और पीड़ाएँ कैद रहती हैं। अगर कोई बात खुशी की होती है, तो वह दूसरों के साथ साझा हो जाती है, मन में उभर कर आती है, लेकिन मन का दर्द, तिरस्कार, उपेक्षा जैसी बातें संकोचवश न तो उभरती हैं और न ही इन्हें उभरने का मौका दिया जाता है। ये सब बरसों तक मन के तहखाने में जमी रहती हैं और इनके कारण हमें पता ही नहीं चल पाता कि कब हमारी स्वाभाविक हँसी-खुशी छिन गए और हमारा मन बीमार हो गया। अतः यह जरूरी है कि समय-समय पर अपने मन की बातों को, मन की गाँठों को खोला जाए।

जिस तरह से खाना यदि बासी हो जाए, पुराना हो जाए, तो वह रखे-रखे यूँ ही खराब हो जाता है, उसी तरह से यदि हमारे मन में, दिल में किसी के प्रति कोई गिला-शिकवा है, किसी तरह की कोई मनोग्रंथि है, मन में कोई ऐसी बात दबी हुई है, कोई ऐसी गाँठ मन में पड़ गयी है, जिससे हम बाहर नहीं निकल पा रहे हैं, तो धीरे-धीरे मन में दबी हुई वह गाँठ नासूर बन जाती है। तब यह हमें निरंतर पीड़ा देती है और फिर इसका इलाज करना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए हमें यह जानना जरूरी है कि हमारे मन में जो गाँठें बसी हुई हैं, वे किस तरह की हैं? वे क्या हैं? गुस्सा, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, बैर, अपमान, अवहेलना, उपेक्षा, आत्महीनता, असुरक्षा आदि में से उन गाँठों की प्रकृति क्या है?

मनोविशेषज्ञों का कहना है कि अपने अन्दर गुस्सा रखना बेहद खतरनाक होता है। इसलिए जब-जब आप कुण्ठित हों, गुस्से में हों, तो शांत रहें। आप ठण्डा पानी पिएँ। अपने अन्दर की पीड़ा को मुक्त करने के बाद आप पाएँगे कि आपकी कई बीमारियों का असर कम हो गया है।

मन को हलका करने के लिए अपने मन की पीड़ा को आवाज देना और गुस्से को अभिव्यक्त करना जरूरी है। 'हील योर इनर वुंड्स' पुस्तक के लेखक एबी वाइन जो कि एक मनोचिकित्सक और एनर्जी हीलर हैं, इस क्षेत्र में लंबे समय से काम कर रहे हैं, उनका कहना है कि आप अगर अन्दर से हलके और साफ नहीं होंगे तो बाहर चाहे कितना भी साफ-सफाई से रहने का प्रयास क्यों न कर लें; लेकिन मानसिक और शारीरिक तौर पर आप बीमार रहेंगे।

अपने मन को साफ करने का उदाहरण देते हुए उनका कहना है कि जब आप बच्चे होते हैं, तो बिना संकोच रोते हैं, गुस्सा निकालते हैं लेकिन जैसे-जैसे आप बड़े होते जाते हैं; वैसे-वैसे आप अपनी भावनाओं की स्वतः अभिव्यक्ति करने में रोक लगा देते हैं और उन्हें दबाकर मन के किसी कोने में रख लेते हैं। धीरे-धीरे मन की स्वतः अभिव्यक्ति को दबाने की कला में, अपने जज्बातों को अपने अन्दर ही रखने की कला में पारंगत हो जाते हैं, उन्हें किसी से साझा नहीं करते, जिसका परिणाम अच्छा नहीं होता।

पिछले ही दिनों कनाडा के ओंटेरियो यूनिवर्सिटी में हुए एक अध्ययन के अनुसार- कुण्ठा व तनाव के लगभग 64 प्रतिशत मरीजों का यह मानना था कि उन्हें इस बात का बिलकुल भी अंदाजा नहीं था कि उनकी खास बीमारी की वजह उनके अन्दर दबा गुस्सा हो सकता है। यह गुस्सा दूसरों की वजह से शुरू होता है और अंततः इसे व्यक्ति अपने ही ऊपर निकालने लगता है, इसके प्रमाण भी वहाँ मौजूद थे, जिसमें कुछ मामलों में मरीजों ने इस गुस्से के कारण अपने आपको नुकसान भी पहुँचाया था।

मनोविशेषज्ञों के अनुसार- लोगों को यह पता ही नहीं होता कि उन्होंने अपने मन में क्या-क्या भर रखा है। इसलिए यह जरूरी है कि अपने आपको जानें। अगर कोई पुरानी बात मन में बार-बार उभर कर आ रही है, तो उसे अन्यथा न लें; बल्कि उस घटना से

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

संबंधित व्यक्ति को माफ करें, स्वयं को भी माफ करें और अपने मन को उस मनोग्रंथि के बोझ से हलका करें।

अपने मन की मनोग्रंथियों को खोलने के कई व्यावहारिक तरीके भी हैं, जैसे- अपने परिवार वालों, दोस्तों या विश्वसनीय लोगों से खुलकर बात करना। ऐसा करने मात्र से लोग ये पाएंगे कि उनका मन हलका हुआ, बहुत दिनों से मन में जो बात दबी हुई थी, वह किसी न किसी माध्यम से बाहर निकली। बातचीत के दौरान यह भी पता चलता है कि मन में जो गाँठें बनी हुई हैं, उनका कोई अर्थ नहीं है। जिन्दगी में सबके साथ अच्छा या बुरा होता है। इसे नकारात्मक दृष्टि से नहीं, बल्कि सकारात्मक दृष्टि से देखने की जरूरत है।

अपने आप से बातें करना भी मन को हलका करने में सहायक होता है। इसके लिए अकेले ही कहीं घूमने चले जाएँ और एकांत में उन दिनों व स्थितियों के बारे में सोचें, जिनकी वजह से खुद को पीड़ा हुई। फिर जिनके कारण मन दुःखी और मन को पीड़ा हुई, उन्हें माफ करते हुए इन मनोग्रंथियों से मुक्त हो जाऐं।

मन को मनोग्रंथियों से मुक्त करने के लिए अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति जरूरी है। यदि यह व्यावहारिक तौर पर नहीं हो सकती, तो इसे कागज पर लिखा जा सकता है और इनसे अपना पीछा छुड़ाया जा सकता है। अतीत की बातें हमारा पीछा नहीं छोड़तीं; लेकिन हमें यह समझना भी जरूरी है कि कुछ चीजों को बदलना हमारे हाथ में नहीं है। वर्तमान समय हमारे साथ है और भविष्य सामने। इसे ही सुधारने व सँवारने की जरूरत है।

जिन वजहों से व जिन लोगों से व जिन परिस्थितियों से मन में गुस्सा व तनाव आता है, मन को परेशानियों का सामना करना पड़ता है, उनसे दूरी बनाना भी मन को मनोग्रंथियों से बचाने एक उपाय है और यदि यह दूरी बनाना संभव न हो, तो अपनी सहनशीलता व सामंजस्यता को विकसित करना भी मन को उन दबावों व पीड़ाओं से उबारने में मदद करता है, जो मन में मनोग्रंथियाँ पैदा करती हैं।

मन में यदि पीड़ा हो, कसक हो, तो वह किसी न किसी रूप में उभरती जरूर हैं, चाहे वह सपनों के माध्यम से हो, या आक्रोशित व्यवहार के माध्यम से या कठोर शब्दों के माध्यम से। मन की यह पीड़ा तो किसी भी माध्यम से बाहर निकल जाती है, लेकिन अचानक किसी भीषण रूप में इसका बाहर निकलना अन्य लोगों के लिए नुकसानदेह हो सकता है या उनके मन को बहुत दुःखी कर सकता है। इसलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे मन की मनोग्रंथियाँ धीरे-धीरे खुलें न कि अचानक ही किसी बड़े फोड़े की तरह फूट पड़ें।

हमारी भारतीय साधना पद्धति में ऐसी कई विधाएँ हैं, जिनसे हम अपने अन्दर की मनोग्रंथियों से बाहर निकाल सकते हैं, उन्हें विरेचित कर सकते हैं जैसे- प्रायश्चित साधना- इसके अंतर्गत विशेष तरह के व्रत-उपवास, मंत्रजप, प्राणायाम, ध्यान आदि आते हैं, जो मन की मनोग्रंथियों को खोलने में हमारी मदद करते हैं और मन को हलका करते हैं। इसके अलावा साधकों द्वारा की जाने वाली योग-साधना के प्रथम चरण का उद्देश्य ही है-मन की गाँठों को खोलना और उनका उपचार करना; क्योंकि जब मन मनोग्रंथियों से मुक्त होगा, तभी वह योगसाधना के मार्ग पर आगे बढ़ सकेगा।

महर्षि पतंजलि द्वारा दिए गए अष्टांग योग में से प्रथम दो चरण-1. यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), 2. नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) यदि जीवनशैली में शामिल किये जाएँ, तो इनके माध्यम से ही हमारी मनोग्रंथियों को पनपने का अवसर नहीं मिलता और यदि मन में मनोग्रंथियाँ भी हैं, तो इस यौगिक जीवनशैली से वे मन से विलीन भी हो जाती हैं।

मनोग्रंथियाँ मन की वे गाँठें हैं, जिनके कारण हमारी जीवन ऊर्जा इनमें ही अटक कर रह जाती है और हम इनके कारण आगे नहीं बढ़ पाते, अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाते। इसलिए यदि हमें अपने जीवन में आगे बढ़ना है, तो मन की राहों में बिछे हुए इन काँटों के समान मनोग्रंथियों को हटाना होगा, अन्यथा ये हमें इतने चुभेंगे कि इनके कारण हमें वहीं रुकना होगा, वहीं ठहरना होगा और फिर हम अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच पाएँगे। मन की राह के इन काँटों को हटाना ही अपने आगे बढ़ने का रास्ता साफ करना है। साधना के पथ पर चल रहे साधकों के लिए मन को मनोग्रंथियों से मुक्त करना ही आध्यात्मिक पथ का पहला कदम कहा जा सकता है। •

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

सबसे प्रिय भक्त कौन?

एक बार की बात है कि देवर्षि नारद अपनी कुछ जिज्ञासाओं को लेकर भगवान विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान के चरणों में नमन करते हुए कहा कि- हे प्रभो! बहुत दिनों से मेरे मन में एक जिज्ञासा बनी हुई है। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं आपके समक्ष उसे प्रकट करूँ। भगवान विष्णु नारद जी के स्वभाव से परिचित थे, इसलिये वे मुसकुराते हुये बोले- 'हाँ! नारद जी आप अपनी जिज्ञासा अवश्य प्रकट करें। कहिये आप क्या जानना चाहते हैं?'

नारद जी बोले- प्रभो! मैं धरती पर भ्रमण करते हुये देखता हूँ कि कोटिशः लोग आपका नाम जप, सुमिरन, भजन आदि किया करते हैं। उन कोटिशः लोगों में अभी ऐसा कौन-सा भक्त है जो आपको विशेष प्रिय है? नारद जी के प्रश्न व जिज्ञासा को जानकर भगवान विष्णु बोले- 'नारद जी! वैसे तो मुझे सारे भक्त प्रिय हैं, पर पृथ्वी पर नदी किनारे बसे एक गाँव में मेरा एक भक्त रहता है। वह मुझे विशेष प्रिय है, वह मुझे विशेष प्रिय क्यों ह ? यह जानने के लिये आपको स्वयं ही वहाँ जाकर देखना होगा।

भगवान विष्णु के बताये स्थान पर नारद जी अपनी वीणा बजाते हुये चल दिये। श्रीमन् नारायण, नारायण का कीर्तन, गायन करते हुये नारद जी उस गाँव में पहुँच गये। वे उस व्यक्ति के पास पहुँच गये जिसके विषय में भगवान विष्णु ने उन्हें बताया था। देवर्षि नारद ने देखा कि वह व्यक्ति तो बड़ा साधारण दीख पड़ता है। वे उसकी दिनचर्या देखने लगे। उन्होंने देखा कि वह सुबह सोकर उठा और एक बार भगवान का नाम लेकर अपने काम में लग गया।

वह एक साधारण किसान था और वह दिन भर अपनी खेतीबाड़ी के काम में, घर गृहस्थी के काम में ही लगा रहा। उसने दिन में न तो कोई पूजा-उपासना की, न ही जप, तप, ध्यान आदि। सुबह से शाम तक काम करके जब वह शाम में थका हारा आया तो कुछ देर विश्राम किया। पशुओं को चारा दिया। भोजन ग्रहण किया और रात्रि में हाथ जोड़कर भगवान को नमस्कार करता हुआ निद्रा की गोद में चला गया।

उसकी सारी दिनचर्या देखकर नारद जी पुनः भगवान विष्णु के पास पहुँचे और बोले- भगवन्! वह व्यक्ति तो सुबह से शाम तक अपने ही कार्य में लगा रहता है। वह न तो जप करता है, न ही ध्यान करता है। फिर वह आपका प्रिय भक्त कैसे हुआ? मैंने धरती पर ऐसे कोटिशः लोगों को देखा है जो दिन रात आपका सुमिरन-स्मरण किया करते हैं। फिर एक साधारण किसान आपको सबसे प्रिय क्यों है?

भगवान विष्णु मुसकुराते हुये बोले- नारद! यह ठीक है कि वह व्यक्ति कोई विशेष धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं करता है। वह जप नहीं करता है। वह कीर्तन करता नहीं दिखता है; पर जब वह सुबह मुझे सच्चे हृदय से मात्र एक बार याद करता है, स्मरण करता है तो उसके उस एक बार के स्मरण से ही उसके रोम-रोम पुलकित हो उठते हैं, उसके हृदय में करुणा, प्रेम व संवेदना उमड़ने लगते हैं। उसके उस प्रेम को देखकर मेरा रोम-रोम भी पुलकित हो उठता है। मेरा हृदय भी आनंद से सराबोर हो जाता है। फिर वह जब अपने खेत में काम करता है तब वह वहाँ भी अपने खेत को ईश्वर का खेत मान कर निष्काम भाव से काम करता है। उसे ऐसा लगता है मानो वह अपने खेत में स्वयं के लिए नहीं; बल्कि ईश्वर के खेत में ईश्वर के लिये ईश्वर का ही काम कर रहा है। उसकी ऐसी निष्कामता देखकर मेरा मन भी हर्षित हो उठता है।

भगवान बोले- मैं उसे देखता हूँ कि वह यथासंभव दूसरों की सेवा भी किया करता है। जब कभी गाँव में आपदा आती है और आस-पास के लोग भूख से व्याकुल होते हैं तब वह स्वयं अपने हिस्से की रोटी निकालकर अपने पड़ोसियों को दे आता है। वह अपने बच्चों सहित गाँव के सभी बच्चों एवं लोगों को मेरा ही रूप मानता है। जब

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

वह पशुओं को चारा खिलाता है तब उन्हें इतना प्रेमपूर्वक खिलाता है मानो वह मुझे ही भोग लगा रहा हो। यह सब देखकर मेरा हृदय भी गद्‌गद् हो जाता है। वह जब रात्रिकालीन विश्राम करता है तब उसे ऐसा लगता है मानो वह मेरी गोद में विश्राम कर रहा है और मैं प्रेम से उसके सिर पर हाथ रखकर उसे सहला रहा हूँ और इस प्रकार मेरा चिन्तन-समरण करता हुआ ही वह निद्रा की गोद में चला जाता है। भगवान विष्णु के मुख से उस भक्त की कथा सुनकर नारद जी की आँखों से भी प्रेमाश्रु बहने लगे। तब नारद जी ने कहा- 'भगवन्! सचमुच वह साधारण व्यक्ति आपका विशेष प्रेम एवं कृपा पाने के ही योग्य है।' •

एक आवश्यक राजकाज के लिए मंत्री की तुरंत आवश्यकता पड़ी। उन्हें बुलाया गया तो मालूम चला कि वे पूजा में बैठे हैं, इस समय नहीं आ सकेंगे। काम जरूरी था तो राजा ने स्वयं ही मंत्री के पास पहुँचना उचित समझा। राजा के पहुँचने पर भी मंत्री उपासना पूरी होने तक जप-ध्यान में ही बैठे रहे। पूजा समाप्त होने पर जब मंत्री उठे, तो राजा ने पूछा- भला ऐसी भी कौन सी महत्त्वपूर्ण बात है जिसके लिए तुम मेरी उपेक्षा करके भी लगे रहे?

मंत्री ने कहा- राजन्! मैं गायत्री जप रहा था। यह महामंत्र लोक और परलोक में कल्याण के सब साधन जुटाता है। इसका फल बहुत बड़ा है। इसी की मैं तन्मय होकर उपासना करता हूँ। राजा ने कहा- तब तो इसे हम भी सीखेंगे और वैसा ही लाभ हम भी उठायेंगे। मंत्री ने कहा- सीखने में तो हर्ज नहीं, पर आपको वैसा लाभ नहीं मिल सकेगा जैसा कि बताया गया है। बिना श्रद्धा-विश्वास के मंत्र फल नहीं देते। मंत्र सीखने से पहले श्रद्धा साध लेना जरूरी है।

राजा जिस काम से आए थे, वह मंत्रणा करके वे वापस चले गए। एक दिन राजा ने प्रसंगवश मंत्री से पूछा- श्रद्धा के बिना मंत्र फल क्यों नहीं देते? मंत्री ने कुछ उत्तर न दिया, चुप रह गए। थोड़ी देर में एक कर्मचारी उधर से निकला तो मंत्री ने उसे बुलाकर बोला- राजा के गाल पर एक चपत लगाओ। कर्मचारी यह बात सुनकर सन्न रह गया। मंत्री के दुबारा दोहराने पर भी वह चुपचाप खड़ा रहा।

मंत्री की शिष्टता देख राजा को क्रोध आ गया और उन्होंने उसी कर्मचारी से कहा तुम मंत्री की गाल पर दो चपत लगाओ। कर्मचारी ने तुरंत मंत्री के गाल पर दो चपत जड़ दिए। अब मंत्री बोले- राजन्! यही आपके प्रश्न का उत्तर है। कर्मचारी ने आपकी आज्ञा मानी पर मेरी नहीं मानी। मंत्रों की यही बात है। वे श्रद्धावान को अधिकारी समझ कर उसकी सारी इच्छाएँ पूरी करते हैं। सत्पात्र और उचित अधिकारी को ही मंत्र का लाभ मिल पाता है। समाधान हो गया।

आओ! लौट चलें, प्राकृतिक जीवन की ओर

इस वर्ष पूरी दुनिया में कोरोना के कहर की चर्चा रही है। सचमुच कोरोना के कहर ने पूरी दुनिया में कोहराम मचा रखा है। एक वायरस ने पूरी दुनिया को लॉकडाउन कर दिया। कल तक जो देश अपनी सैन्य शक्ति, आणविक शक्ति, धन शक्ति, विज्ञान व तकनीकी शक्ति के दंभ में फूले नहीं समा रहे थे, वे भी आज एक वायरस के समक्ष घुटने टेकने को मजबूर हो गये हैं। दुनिया के ताकतवर देशों की ताकत भी आज कोरोना के कहर के समक्ष नतमस्तक हो त्राहिमाम कर रही है। एक वायरस के कारण मानो पूरी दुनिया थम सी गई है। समय रुक सा गया है। दुनिया भर में अब तक हजारों लोग कोविड-19 के शिकार बने हैं, काल-कवलित हुये हैं और लाखों लोग इसकी चपेट में हैं। विकासशील और अविकसित देशों की कौन कहे, विकसित देशों की चिकित्सा व्यवस्था भी कोरोना के समक्ष बौनी नजर आ रही है।

इस वायरस के प्रभाव को नेस्तनाबूद करने को लेकर विश्वभर के चिकित्साविज्ञानी चिंतित हैं, और शोध करने में जुटे हुये हैं। निश्चित रूप से समयान्तराल में विश्व के वैज्ञानिक शोधोपरान्त वैक्सीन आदि के रूप में इसका इलाज ढूँढ़ने में सफल हो सकेंगे, पर तब तक शायद इस वायरस के ताण्डव से विश्व मानवता की बहुत अधिक हानि हो चुकी होगी। आज हमारे समक्ष जो यह स्थिति बनी है उसमें हमें इस युग के महान विचारक, चिन्तक, मनीषी, दार्शनिक, योगी, गायत्री के सिद्ध साधक और 21वीं सदी उज्जवल भविष्य के घोषणाकार युगद्रष्टा युगऋषि वेदमूर्ति श्रीराम शर्मा आचार्य जी के द्वारा सन् 1986 में की गई एक भविष्यवाणी और चेतावनी को उद्धृत करना बड़ा ही समीचीन और प्रासंगिक प्रतीत होता है।

अपनी इस घोषणा में वे कहते हैं- "इस समय की परिस्थितियाँ जिनमें आप इन दिनों हैं ये अगले दिनों रहेंगी नहीं। इसमें काफी हेर-फेर होने वाला है। एक पक्ष विनाश का है और दूसरा पक्ष निर्माण का है। विनाश का पक्ष चारों ओर चलेगा। आप देख लेना क्योंकि आप तो जिन्दा रहेंगे। जिन्दा तो मुझे भी रहना है पर हाँ! मैं तब स्थूल शरीर में तो नहीं रहूँगा पर सूक्ष्म शरीर में रहकर भी मैं बराबर काम करता रहूँगा और आपके साथ-साथ रहूँगा। इस समय में क्या होगा? इस समय में बड़ी मुसीबतें आएँगी और मुसीबतों से आप भी बच नहीं सकेंगे। चारो दिशाओं में जब आँधियाँ आती हैं, तूफान आते हैं, बरसात आती है तब कोई आदमी सुरक्षित नहीं रह सकता। अगले दिन बहुत भयंकर आने वाले हैं। इसमें क्या होने वाला है? हमसे नेचर, प्रकृति नाराज हो गई है। बीमारियाँ फैलती हैं तो ऐसी फैलती हैं कि डॉक्टर लोग कहते हैं कि हमने तो इस प्रकार की किसी बीमारी का नाम भी नहीं सुना, कभी देखा भी नहीं। इसके विषय में कभी किसी किताब में पढ़ा नहीं। ऐसी स्थिति में डॉक्टर कहते हैं क्या सुई लगायें, क्या दवा दें, क्योंकि ऐसा मरीज कभी देखा नहीं। वास्तव में आज हम प्रकृति के प्रकोप से घिरे हुये हैं। हम जहर से घिरे हुये हैं। हम वस्तुओं के अभाव से घिरे हुये हैं। हम महँगाइयों से घिरे हुये हैं और लोगों के खेल-खिलवाड़ से घिरे हुये हैं पर हम आपके लिये पूरे विश्व समुदाय के लिये काम करेंगे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि युगद्रष्टा ने आज की विषम परिस्थितियों को अपनी योगदृष्टि से वर्षों पूर्व ही देख लिया था। संदेश साफ है। आज जो भी परिस्थितियाँ बनी हैं उसके लिए स्वयं व्यक्ति ही जिमेदार है। आज व्यक्ति वृक्ष की जिस डाली पर बैठा है उसे ही काटने में लगा है। आज हम औद्योगिक विकास और शहरीकरण के नाम पर पेड़-पौधों, वनस्पतियों, जल, वायु, मिट्टी आदि सबको समाप्त करने व जहरीले बनाने पर तुले हुये हैं।

रासायनिक खादों के अंधाधुंध प्रयोग ने हवा, मिट्टी, पानी सबको जहरीला बना दिया है और शाक, सब्जी, अन्न, जल, वायु के रूप में हम उसी जहर को ग्रहण कर रहे हैं। हममें प्राणतत्व व जीवनीशक्ति लगातार कम से कमतर होते जा रहे हैं। हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होती जा रही है या फिर हो चुकी है। फलस्वरूप हम नानाविध शारीरिक व मानसिक व्याधियों के चक्रव्यूह में घिरे हुये हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं के बढ़ने के साथ-साथ रोज नई-नई बीमारियाँ, नये रूप में, नये नाम के साथ वैश्विक स्तर पर दस्तक दे रही हैं। कोविड-19 भी उन्हीं में से एक है और इसके लिये निश्चित रूप से व्यक्ति के साथ-साथ

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

पूरा विश्व समुदाय जिमेदार है।

यदि हमें सचमुच एक सुन्दर, समुन्नत, समृद्ध व खुशहाल जीवन जीना है तो वैयक्तिक स्तर पर हमें अपने अंतरतम के आकाश को, अंतरिक्ष को साफ रखना होगा। हमें प्राकृतिक जीवनशैली अपनानी होगी। हमें मांसाहार जैसे अप्राकृतिक खाद्य पदार्थों का परित्याग करना होगा। पशुओं एवं अन्य जीवों का मांस प्राकृतिक आहार नहीं है, क्योंकि ईश्वर ने, प्रकृति ने व्यक्ति की शारीरिक संरचना मांसाहार के अनुकूल बनाया ही नहीं है। प्राकृतिक जीवन का अर्थ ही है प्रकृति जैसा जीवन प्रकृति के अनुकूल जीवन।

हमारे आसपास पीपल, नीम, तुलसी आदि पर्यावरण मित्र वृक्ष व पौधे होने ही चाहिये, जिनसे हमें स्वच्छ प्राणवायु मिल सके। हमें प्रातःकाल सूर्य नमस्कार, प्राणायाम, उगते हुये सूर्य का ध्यान आदि का नियमित अभ्यास करना चाहिये। प्रतिदिन गायत्री यज्ञ-हवन करना चाहिये। इसके साथ ही साथ योगियों, महापुरुषों द्वारा रचित आध्यात्मिक साहित्य व शास्त्र आदि का स्वाध्याय भी करना चाहिये। हमारे आसपास का वातावरण, हमारा आशियाना, अत्यंत स्वच्छ होने चाहिये जिससे किसी भी प्रकार के जीवाणु, वायरस आदि के पनपने की संभावना ही न रहे।

हमें रासायनिक खादों से मुक्त ऑर्गेनिक खेती, प्राकृतिक खेती करनी चाहिए। खाने के रूप में हमें ताजे मौसमी फल, शाक, सब्जी आदि का ही सेवन करना चाहिये; नमक एवं शक्कर के अधिकतम उपयोग से बचना चाहिये क्योंकि इनके अधिकतम उपयोग से आज लोग नानाविध बीमारियों से पीड़ित हैं। फास्ट फूड, जंक फूड आदि जैसे हानिकारक खाद्य पदार्थों से बचना चाहिये। रोज स्वच्छ एवं धुले हुये वस्त्र ही पहनने चाहिये। तुलसी, अदरक, काली मिर्च से तैयार हर्बल चाय आदि पेयों का सेवन करना चाहिये। इन सबके प्रयोग से हम स्वस्थ भी रह सकेंगे और खुशहाल भी। हमारी जीवनीशक्ति, रोग प्रतिरोधक क्षमता ऐसी ही जीवनशैली से मजबूत रहेंगे और उसके कारण कई संक्रमणजन्य बीमारियों से भी हम बच सकेंगे।

यदि इस प्रकार हम प्राकृतिक जीवन जियें तो नानाविध संक्रमणजन्य बीमारियों के आक्रमण से बचे रह सकेंगे, और यदि उनके प्रभाव में आ भी गये तो, अपनी उच्चतर जीवनीशक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता के बल पर हम शीघ्र स्वस्थ हो सकेंगे। हमारे घर का कोना-कोना, चौका, शौचालय, बिस्तर आदि हर चीज स्वच्छ से स्वच्छतर होने चाहिये। रात्रि में जल्दी सोकर सुबह सूर्योदय से पूर्व उठकर हम प्रातःकाल की स्वच्छ प्राणवायु और सूर्य की ऊर्जा से ऊर्जस्वित होकर सचमुच एक आनंददायी एवं ऊर्जावान जीवन जी सकते हैं।

प्रकृति हमें यह भी सिखाती है कि हमारा जीवन स्वार्थ के लिये नहीं, परमार्थ के लिये होना चाहिये। सूर्य अपने आलोक से सारे जगत् को आलोकित करता है। चंद्रमा रात्रि को अपने सौन्दर्य और शीतलता से भर देता है। सतत प्रवहमान सिंधु, सरिताओं का जलरस सभी जीव, जंतु व प्राणियों को जीवन प्रदान करता है। फलों से लदे हुये वृक्ष हमें अपने मधुर फलों से तृप्त करते हैं। सूर्य की तपन से वाष्पीभूत सिन्धु-सरिताओं का जल पुनः बारिश की अमृत बूँदें बन धरती पर बरस कर धरती को हरा-भरा बनाती हैं।

हम भी प्रकृति से यह सीख सकते हैं और अपने समय, श्रम व प्रतिभा को जन-कल्याण, समाज कल्याण में लगाकर अपने जीवन को अधिक सफल, सुन्दर व सुखी बना सकते हैं। हम व्यापक स्तर पर अपने आसपास वृक्षारोपण को बढ़ावा दे सकते हैं। वैश्विक स्तर पर हर देश को अंतरिक्ष व आकाश को स्वच्छ बनाये रखने, जल, वायु, मिट्टी को स्वच्छ बनाये रखने को तत्पर होना चाहिये। इससे हम जलवायु परिवर्तन अम्लीय वर्षा आदि को रोक सकते हैं और वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों को एक खूबसूरत दुनिया विरासत के रूप में सौंप सकते हैं। अब वैश्विक स्तर पर कूटनीति, कुटिलनीति की नहीं; बल्कि प्रेमनीति, परिवार नीति को अपनाने की आवश्यकता है तभी यह दुनिया स्वर्ग सी सुन्दर और खुशहाल हो सकेगी।

सन् 1986 में दिये गये अपने वीडियो संदेश में युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने अगले दिनों एक ऐसी ही सुन्दर व खुशहाल दुनिया की संकल्पना के साकार होने की प्रबल संभावना व्यक्त की है- "आज पूरी दुनिया बड़ी तहस-नहस हो रही है। सर्वत्र आपाधापी व घोर विषमता है। प्रकृति का अंधाधुंध दोहन है। एक राष्ट्र दूसरे को नीचा दिखाने, शोषण करने और आणविक एवं जैविक हमले

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

करने की धमकियाँ दे रहा है पर अगले दिनों ऐसी परिस्थितियाँ रहेंगी नहीं। इनमें काफी हेर-फेर होने वाला है। इनमें विषमता का विनाश भी होगा और नई दुनिया का सृजन भी। हम दुनिया को अपनी तपशक्ति से एक धुरी पर इकट्ठी करेंगे। उसमें क्या होगा? उसमें सारी दुनिया का एक धर्म होगा और सारी दुनिया एक राष्ट्र के रूप में रहेगी। सारी दुनिया में एक मैनेजमेंट, एक व्यवस्था रहेगी। समानता के अधिकार हर एक को मिलेंगे। इससे बड़ा विषमकाल कभी नहीं आया; पर हम इस दुनिया को शानदार बनायेंगे। हाँ! पहले हमें नींव खोदनी पड़ती है उसके बाद उस पर महल बनाया जाता है; पर नींव खोदने में एक बड़ा संघर्ष होने वाला है। हमें दुनिया का एकीकरण करना है और सभी लोग, सभी राष्ट्र मिल-बाँट कर खायेंगे और हँसते, हँसाते हुये रहेंगे। हम तोड़ने में भी शक्ति लगायेंगे और बनाने में भी। धरती पर स्वर्ग दिखे, हम ऐसी ही दुनिया बनायेंगे। अगले दिनों हमारी यही योजना है।"

युगऋषि के इस संदेश में हमारे लिये एक समुन्नत, सुन्दर व शानदार दुनिया बनने व बनाने का आश्वासन भी है और चेतावनी भी कि हम प्रकृति का दोहन न करें, शोषण न करें। हम प्रकृति को अपने जीवन के अंग-अवयव के रूप में देखें और तद्नुरूप प्राकृतिक जीवन जियें। आज दुनियाभर के चिकित्सकों, चिन्तकों, विचारकों में भी व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व को स्वस्थ्य, समृद्ध व खुशहाल बनाये रखने के लिये प्राकृतिक जीवनशैली, भारतीय जीवनशैली, योग एवं आध्यात्मिक जीवनशैली को अपनाये जाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

कोरोना के तात्कालिक प्रभाव के दौरान दुनिया के कई देशों ने अपने नागरिकों को योग, शाकाहार आदि अपनाने की सलाह दी है। शिष्टाचारवश एक-दूसरे का आलिंगन एवं हाथ मिलाने की बजाय भारतीय शैली में हाथ जोड़कर नमस्ते कहकर एक-दूसरे का अभिवादन करने को ही श्रेष्ठ माना जाने लगा है एवं कई देशों में वायरस के संक्रमण से बचने-बचाने के लिये इसे अपनाया भी जाने लगा है। मांसाहार की जगह शाकाहार को श्रेष्ठ माना जाने लगा है। यौगिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के महत्त्व को मान्यता दी जाने लगी है। वास्तव में यह आहट है एक नई एवं आनंददायी दुनिया के आगमन की। अस्तु यह अच्छा ही है कि अब हम भी लौट चलें प्रकृति की ओर, प्राकृतिक जीवन की ओर, एक स्वस्थ, सुन्दर, समुन्नत जीवन एवं दुनिया की ओर। यह एक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व सबके लिये समान रूप से उपयोगी है। शायद हम सबके लिये प्रकृति का यह आह्वान भी है और एक चेतावनी भी।

• • •

व्यक्तित्व का उत्थान-पतन किस प्रकार सुख-दुःख का कारण बनता है। इस पर गुरुकुल में विचार-विमर्श चल रहा था। पूर्णिमा पर चंद्रिका बरसाते चन्द्रमा को देखकर महर्षि गर्ग से उनके एक शिष्य ने पूछा- 'गुरुवर! पन्द्रह दिन चन्द्रमा की आभा बढ़ती रहती है, पन्द्रह दिन घटती रहती है। इसका रहस्य क्या है?'

ऋषि गर्ग ने समझाया- 'वत्स! विधाता ने चन्द्रमा का यह क्रम यह बताने के लिए बनाया है कि व्यक्तित्व के विकास से लोग न केवल स्वयं प्रकाशित होते हैं, वरन् संसार को भी प्रकाशित करते हैं; जबकि पतन की ओर उन्मुख होने वाले क्षीण होते और अज्ञान के अंधकार में गिरकर नष्ट हो जाते हैं।'

धरती का ब्रह्ममुहूर्त्त सन्निकट है

समय दुरूह है लेकिन उमीद की किरणें अभी भी शेष हैं। कुरुक्षेत्र के मैदान में भगवान श्रीकृष्ण ने अपने परम सखा, अर्जुन को गीता में कहा है कि-यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अर्थात् हे अर्जुन! जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, पाप, अनाचार, दुराचार, अत्याचार बढ़ जाता है- मैं तब-तब दुष्टों का संहार करने के लिए, धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेता हूँ। ये बातें बिलकुल सत्य हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जब ईश्वर ने इस धरती को पापियों, आततायियों, इंसानियत की हत्या करने वालों, साधु-संतों, मासूम बच्चों, लाचार महिलाओं, आम जनता पर जुल्म करने वालों से मुक्त कराने के लिए अवतार लिया है।

श्री रामचन्द्र जी ने अवतार लेकर रावण और बहुत सारे राक्षसों का संहार कर इस धरती का बोझ घटाया। भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर जहाँ अपनी मधुर बाँसुरी बजाकर गोप-गोपियों संग रासलीलाएँ रचाईं तो वहीं उस समय के राक्षस प्रवृत्ति के अपने ही मामा कंस तथा अन्य राक्षसों को यमलोक पहुँचाया। महाभारत के महासंग्राम में उन्होंने कौरवों तथा पांडवों में शांति दूत बनकर युद्ध टालने की भरसक कोशिश की लेकिन अन्ततः युद्ध होने की स्थिति में अधर्म के विरुद्ध धर्म का साथ देते हुए अपने मित्र पांडवों का साथ दिया।

आज उस बात की जरूरत महसूस होने लगी है कि परमात्मा एक बार फिर अवतार लें। आज धर्म की हानि हो रही है। बेईमानी, हिंसा, हत्या, क्रोध, कामवासना, लोभ, बलात्कार आदि घटनाओं की बाढ़ आयी हुई है। कन्या भ्रूणहत्या बढ़ रही है। माँ-पिता अनेक कष्ट के बाद पुत्रप्राप्ति करके स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं लेकिन अधिकांश पुत्र बड़े होकर अपने माता-पिता का ही तिरस्कार कर रहे हैं। उनका अपमान, अवहेलना तथा तिरस्कार कर रहे हैं। कैसा घोर कलयुग है यह। आजकल परिवार में सुख-शांति नहीं है। कोई किसी का आज्ञाकारी नहीं है। बड़ों को क्या कहें छोटे-छोटे बच्चों में भी संस्कार नाम की कोई चीज नहीं है। उनमें क्रोध, आवेश, अहंकार, आपराधिक प्रवृत्ति तथा बड़ों के प्रति अनादर की भावना घर कर रही है। उन्हें शिक्षा संस्थाओं में जो शिक्षा दी जाती है वह सिर्फ पैसा कमाने के लिए ही होती है। नैतिकता, मूल्य, भाईचारा, समाजसेवा, ईमानदारी, परिश्रम या फिर देश के लिए कुर्बान हो जाने के लिए उनके अन्दर कोई जज्बा नहीं है।

आज के विद्यार्थी अपने गुरुजनों का सम्मान करने के बदले में उनका अपमान करते हैं। आज के शिक्षक गुरु द्रोणाचार्य, विश्वामित्र आदि की तरह के नहीं होते। आज के शिक्षक अपने शिष्यों को समर्पित भावना से शिक्षा नहीं देते हैं। मित्रों की बात भी जितनी कम की जाए उतना ही अच्छा है। आजकल श्रीराम तथा हनुमान जी की तरह निश्छल, निष्कपट तथा स्वार्थरहित मित्रता कहाँ देखने को मिलती है? श्रीकृष्ण तथा सुदामा एवं श्रीकृष्ण तथा अर्जुन जैसी मित्रता देखने को भी नहीं मिलती। आजकल के मित्रों की मित्रता में स्वार्थपरता अधिक होती है। दोस्ती को दुश्मनी में बदलते देर नहीं लगती। आजकल के शासक पहले के शासकों की तरह नहीं हैं। पहले शासकों का उद्देश्य लोगों का जनकल्याण होता था। वे भेष बदलकर जनता के बीच में जाकर उनकी समस्याओं का पता लगाते थे और लोगों के दुख-दर्द दूर करने की कोशिश करते थे लेकिन आज के शासकों में ऐसी बात नहीं रही। अधिकांश तो सत्ता के नशे में मदमस्त रहते हैं।

बेशक हमारे यहाँ हर पाँच साल बाद चुनाव होते हैं जिसके तहत मतदाता अपनी पसंद के प्रतिनिधि चुनकर उन्हें सरकार बनाने का अधिकार देते हैं फिर भी ये प्रतिनिधि जनहित में कम और स्वहित में ज्यादा चलते हैं। इनमें से बहुत सारे भ्रष्ट, व्यभिचारी, अधिकारों का दुरुपयोग करने वाले, सुरा-सुंदरीमें मस्त रहने वाले तथा जनता के प्रति लापरवाह होते जाते हैं। संविधान को तोड़-मरोड़ कर जनता की भलाई के नाम पर सत्ता से चिपके रहने की कोशिश करते रहते हैं। शासक लोग भाईचारे, आपसी प्रेम भावना, सौहार्द बनाने तथा सभी धर्मों को समान समझने के बदले में लोगों के बीच

वैमनस्य का बीज बोते हैं। स्वतंत्रता के 71 साल गुजर जाने के बाद भी लोगों की मूलभूत समस्याएँ बरकरार हैं बल्कि पहले से कई गुना ज्यादा ही हो गई हैं।

हमारे शासक जनता को मूर्ख बनाकर हर हाल में वोटों की राजनीति करते हैं। उन्हें जनकल्याण, देश की सुरक्षा, विकास आदि से कोई वास्ता नहीं रहा। आज दुनिया तबाही के कगार पर खड़ी है। इतने परमाणु बम, अस्त्र-शस्त्र, मिसाइलें, हथियार बन गए हैं कि दुनिया का कई बार विनाश किया जा सकता है। यहाँ चाहे अलग-अलग शासक हों, अलग क्षेत्रों, भाषाओं, सम्प्रदायों वाले लोग हों- सभी एक-दूसरे के खून के प्यासे बने हुए हैं। कभी भी कुछ भी हो सकता है। झूठ, पाखंड, लापरवाही, बेईमानी, अनीति, अत्याचार चरम पर हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए तो तमस का साम्राज्य है और तमस है कि सबको आच्छादित करता नजर आ रहा है। घटाटोप अंधकार में रास्ता नहीं दिखता मंजिल की तो बात दूर की है। ऐसे में सर्वनाश के अलावा कुछ भी नहीं समझ में आता है लेकिन साथ ही एक तथ्य और भी है। इस सघन अंधकार के बाद स्वर्णिम सूर्योदय का होना भी निश्चित है।

जिनकी दृष्टि गहरी है जो दूर तक देख सकते हैं, उन्हें दिखायी देता है कि उज्ज्वल भविष्य सन्निकट है। बस हमें अपने-अपने कर्तव्य के निर्वहन का भाव, अपनी जिम्मेदारी का भान होना जरूरी है। जब हम सब सद्कर्म, सद्चिन्तन एवं सेवा करने लग जाएें तो वह दिन दूर नहीं है, जब इसी धरती पर स्वर्ग के अवतरण को देखा जा सकता है।

• • •

किसी समय चंद्रमा बहुत सुंदर था। हर दिन उसका चेहरा खिला रहता था और चाँदनी पूरी रात छिटकती रहती थी। कुछ समय बाद चंद्रमा पर मनहूसियत सवार हुई। वह चुप रहने लगा। हँसने-मुस्कुराने की आदत छोड़ कर मुँह लटकाए बैठा रहता। जैसे-जैसे चुप्पी बढ़ी, वैसे-वैसे चाँद की रोशनी भी घटने लगी। यहाँ तक कि पंद्रह दिन में वह बिल्कुल कुरूप हो गया। न उसके चेहरे पर रोशनी रही और न ही चाँदनी छिटकी। लोगों को भी अखरा।

चाँद अपना दुखड़ा रोने विधाता के पास पहुँचा और बोला- मेरी खूबसूरती कहाँ चली गयी? मैं काला-कुरूप क्यों हो गया? विधाता बोले- मूर्ख! तू इतना भी नहीं जानता कि हँसना ही खूबसूरती है, मुस्कुराहट का ही नाम चाँद है। यह मनहूसियत छोड़ और हर दिन खिलखिलाता रह। तेरी खूबसूरती फिर से वापस आ जाएगी।

चंद्रमा ने विधाता की बात मानी और फिर से हँसने की कोशिश करने लगा। जितनी सफलता मिली, उतनी ही उसकी खूबसूरती चमकती गयी। पंद्रह दिन में फिर से पुरानी स्थिति में पहुँच गया। पूर्णमासी के दिन पूरे प्रकाश के साथ चमका। पर पुरानी आदत के कारण फिर चेहरा मुरझाना शुरू हुआ, तो अमावस्या आते-आते वह फिर काला-कुरूप हो गया। यह देख कर वह घबड़ाया और विधाता की नसीहत को ध्यान में रखकर फिर मुस्कुराने लगा और धीरे-धीरे अपनी खोयी खूबसूरती फिर से प्राप्त कर ली। तब से चंद्रमा की यही आदत चली आ रही है।

सशक्त टीम के आधारभूत तत्व

किसी भी बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक सशक्त टीम का होना अत्यंत आवश्यक होता है लेकिन एक सशक्त टीम कहीं बनी बनायी उपलब्ध नहीं होती, इसे तैयार करना पड़ता है, गढ़ना पड़ता है। एक सशक्त टीम का निर्माण कैसे होता है, इसके आधारभूत तत्वों का ज्ञान किसी भी नेतृत्व के लिए आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत हैं इसके कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्रः

टीम लक्ष्य एवं विजन की स्पष्टता- ऐसा करने के लिए पहला आधार है। टीम का अर्थ ही एक समान उद्देश्य के लिए कटिबद्ध सामूहिक प्रयास होता है, जिसमें हर सदस्य अपनी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर अपना नैष्ठिक योगदान देता है। इसका आधार टीम का लक्ष्य एवं विजन के प्रति स्पष्ट समझ होते हैं, जो स्वप्रेरित भी हो सकती है और नेतृत्व द्वारा संप्रेषित एवं प्रेरित भी हो सकती है। जहाँ टीम सदस्य स्वप्रेरित न हों वहाँ नेतृत्व की भूमिका अहम हो जाती है।

इस तरह प्रेरक एवं दूरदर्शी नेतृत्व एक सशक्त टीम का केंद्रीय तत्व होता है। नेतृत्व में जितने अधिक आदर्श नेता के गुण होंगे, टीम भी उसी अनुपात में सशक्त होगी। नेतृत्व का दूरदर्शी, लोकतांत्रिक, उत्साही, ईमानदार, न्यायप्रिय, साहसिक, संवेदनशील, सेवाभावी, निरहंकारी एवं चरित्रवान होना आवश्यक है। ऐसा होने पर ही टीम में वह वातावरण एवं विश्वास पनप सकेगा, जिनके माध्यम से उच्चस्तरीय एवं दूरगामी परिणामों की आशा की जा सके। नेतृत्व के साथ टीम सदस्यों की निष्ठा एवं लगन का होना भी महत्त्वपूर्ण कारक हैं। सदस्यों में स्वयं ही लक्ष्य के प्रति न्यूनतम निष्ठा एवं अनुराग का होना अभीष्ट है, जिसे नेतृत्व फिर अपनी दूरदर्शिता एवं नेतृत्व क्षमता के आधार पर कई गुना बढ़ा सकता है।

इसमें टीम सदस्यों की सुपरिभाषित भूमिकाऐं होना भी आवश्यक हो जाता है। जब एक टीम का निर्माण हो रहा होता है, तो टीम निर्माण की प्रक्रिया कुछ चरणों से होकर गुजरती है और जब तक सदस्यों को अपनी भूमिका स्पष्ट नहीं होती तो वे संघर्ष एवं द्वन्द्व की स्थिति में होते हैं। नेतृत्व ऐसे में सदस्यों की भूमिका को स्पष्ट करते हुए इस दुविधा की स्थिति से शीघ्रातिशीघ्र बाहर निकालता है व टीम को बेहतर प्रदर्शन की अवस्था तक ले जाता है।

सुपरिभाषित भूमिका के साथ कार्य के स्पष्ट नियम, रूपरेखा एवं तौर-तरीके भी एक सशक्त टीम का निर्माण करते हैं, जिससे कि तीव्रतम गति से लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। इसमें उचित पुरस्कार एवं समीक्षा की व्यवस्था भी टीम को प्रभावशाली बनाते हैं। बेहतरीन काम करने वालों को उचित पुरस्कार तथा न कर पाने वालों की उचित समीक्षा की व्यवस्था टीम को सदा प्रेरित रखती है।

इसके साथ ही टीम के निर्णय जितने अधिक लोकतांत्रिक ढंग से होंगे, टीम में आपसी विश्वास उतना ही मजबूत बना रहेगा। एकतरफे निर्णय टीम के सदस्यों में असंतोष के कारण बन सकते हैं। सभी सदस्यों की राय-मशवरा लेकर किए गए निर्णय टीम को सशक्त बनाते हैं व दीर्घकालिक सफलता के आधार बनते हैं। निर्णय में टीम सदस्यों की अकिंचन ही सही किंतु उचित भागीदारी उन्हें टीम का महत्त्वपूर्ण सदस्य होने का अहसास भी प्रदान करती है।

इसके साथ प्रभावी संचार एक सशक्त टीम का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है। यह संचार टीम के अंदर सदस्यों के बीच आपसी संचार या टीम के बाहर अधिकारियों के साथ हो सकता है। संचार के विविध माध्यमों यथा - प्रिंट, इलैक्ट्रॉनिक, वेब माध्यमों का इसमें उपयोग हो सकता है। हर स्तर पर प्रभावी संचार एक सशक्त टीम का निर्माण करता है।

त्वरित कन्फलिक्ट रिजोल्यूशन या संघर्ष समाधान प्रभावी टीम का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है। कार्यों की अस्पष्टता तथा

टीम सदस्यों की प्रकृति में विविधता के कारण आपसी भेदभाव एवं संघर्षों का उभरना स्वाभाविक है। जितनी जल्दी इनकी तह तक जाकर इनके निराकरण की प्रक्रिया सपन्न हो उतना ही उचित रहता है। इसमें देरी प्रकारान्तर में असंतोष का कारण बनती है तथा दीर्घकाल तक निरुत्तरित रहने पर विस्फोटक स्थिति तक पैदा कर सकती है, जिससे टीम भावना को गहरी क्षति हो सकती है।

ऐसा करने के लिए नियमित मीटिंग एवं विचारमंथन महत्त्वपूर्ण रहते हैं, जिसमें सबके विचार सामने आएँ, भावनात्मक गुबार हल्के होते रहें तथा टीम की रणनीति के नए बिंदु स्पष्ट होते रहें, जिनके आधार पर फिर आगे की और प्रभावी कार्ययोजना बनायी एवं लागू की जा सके।

इसके साथ टीम सदस्यों में योग्यता का विकास एवं कौशल का निखार भी आवश्यक है। टीम के सदस्य जहाँ भी अपनी योग्यता एवं क्षमता में कमी अनुभव कर रहे हों, इसका आंकलन करते हुए इनके विकास की व्यवस्था की जा सकती है। अपने विषय का ज्ञान हो या भाषा कौशल या तकनीकी कौशल या संसाधनों का अभाव या अन्य निखार- इनकी व्यवस्था कर टीम को सशक्त बनाया जा सकता है। इसके लिए सदस्यों के लिए उचित कार्यशाला एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है।

टीम भावना को बनाए रखना महत्त्वपूर्ण होता है। टीम सदस्यों के बीच आपसी प्रतिद्वन्द्विता यदि स्वस्थ नहीं रही व आपसी अविश्वास एवं विद्वेष की भावनाएँ बढ़ती गयीं तो ये आगे चलकर घातक रूप ले सकती हैं। इनके निवारण के लिए बीच-बीच में मैत्री खेल, सामूहिक ट्रेकिंग, पिकनिक जैसी गतिविधियों को आजमा कर आपसी सद्भाव, भाईचारे एवं आत्मीयता विकास के वातावरण को तैयार किया जा सकता है।

टीम में सामूहिक जिम्मेदारी का भाव महत्त्वपूर्ण रहता है, जिससे कि किसी असफलता के दंश को मिलजुल कर वहन किया जाए, न कि टीम की अप्रत्याशित असफलता पर किसी एक को दोष दिया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि टीम का शुभारंभ जिस उत्साह के साथ हुआ था, वह उत्साह अनवरत बना रहे। यदि इसमें कोई कमी आ रही हो तो टीम किस अवस्था में है, इसका आंकलन करते हुए, उचित उपचारात्मक कार्यवाही की जा सकती है, जिससे कि टीम समय पर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके। यदि इन सूत्रों का अनुशीलन किया जाए तो टीम की सफलता असंदिग्ध हो जाती है।

• • •

चाहे कैसी भी परिस्थितियाँ आएँ जूझने का साहस होना चाहिए। एक था राक्षस। उसने एक आदमी को पकड़ा। उसको उसने खाया नहीं, डराया भर और बोला- 'मेरी मर्जी के कामों में निरन्तर लगा रह, यदि ढील की तो खा जाऊँगा।' वह आदमी जब तक बस चला तब तक काम करता रहा। जब थक कर चूर-चूर हो गया और जब काम सामर्थ्य से बाहर हो गया तो उसने सोचा कि तिल-तिल कर मरने से तो एक दिन पूरी तरह मरना अच्छा। उसने राक्षस से कह दिया- 'जो मर्जी हो सो करें, इस तरह मैं नहीं करते रह सकता।' राक्षस ने सोचा कि काम का आदमी है। थोड़ा-थोड़ा काम बहुत दिन करता रहे तो क्या बुरा है? एक दिन खा जाने पर तो उस लाभ से हाथ धोना पड़ेगा जो उसके द्वारा मिलता रहता है। राक्षस ने समझौता कर लिया और खाया नहीं, थोड़ा-थोड़ा काम करते रहने की बात मान ली। कथासार यही है- 'हममें 'न' कहने की भी हिम्मत होनी चाहिए। गलत का समर्थन नहीं करूँगा, उसमें सहयोग नहीं दूँगा।' जिसमें इतना भी साहस न हो तो उसे सच्चे अर्थों में मनुष्य नहीं माना जा सकता।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

बिनु सत्संग विवेक न होई

एक पौराणिक कथा के अनुसार एक बार देवर्षि नारद भगवान विष्णु के पास गये और उन्हें नमन-वंदन करते हुये बोले- 'हे प्रभु! कृपा करके मुझे सत्संग की महिमा सुनाइए। मुझे विभिन्न लोकों में भ्रमण-विचरण करना होता है। भ्रमण के दौरान कई लोग मुझसे ईश्वर की लीला, कथा व सत्संग की महिमा के विषय में सुनना चाहते हैं। देव, गंधर्व से लेकर मनुष्यों की सत्संग संबंधी कई जिज्ञासायें होती हैं, प्रश्न होते हैं। हे प्रभु! हरिकथा व सत्संग की महिमा का वर्णन भला आप से श्रेष्ठ कौन कर सकता है? इसलिये हे प्रभु! मुझ दास पर कृपा करते हुये मुझे सत्संग की महिमा सुनाइए।'

देवर्षि नारद की निश्छल भक्ति व लोककल्याण की दृष्टि से उनके द्वारा प्रकट की गई जिज्ञासा को सुनकर भगवान विष्णु बड़े ही हर्षित हुये और बोले- 'हे नारद! सत्संग की महिमा इतनी ज्यादा है कि यह वर्णन से भी परे है। सत्संग की तो अनुभूति ही की जा सकती है, वर्णन नहीं।' नारद जी मन ही मन सोचने लगे कि शायद प्रभु मुझे सत्संग की महिमा का वर्णन नहीं सुनाना चाहते हों। नारद जी के चेहरे के भावों को प्रभु समझ गये और बोले- नारद! तुम यहाँ से कुछ दूर आगे जाओ। आगे जाने पर तुहें एक इमली का वृक्ष मिलेगा। उस वृक्ष पर विविध रंगों वाला एक विचित्र गिरगिट रहता है। वह तुहें सत्संग की महिमा सुना सकता है। देवर्षि नारद प्रसन्नचित्त हो कर वहाँ से चल पड़े। कुछ देर बाद वे उसी वृक्ष के पास पहुँच गये। उन्होंने उस वृक्ष की एक शाखा पर सचमुच एक विविध रंगों वाला अद्‌भुत गिरगिट देखा।

नारद जी अपनी योगविद्या से गिरगिट से बातें करने लगे। उन्होंने गिरगिट से पूछा- 'क्या तुम मुझे सत्संग की महिमा बता सकते हो?' पर यह क्या! नारद जी का प्रश्न सुनते ही गिरगिट वृक्ष से नीचे गिर कर मर गया। यह दृश्य देखकर नारद जी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे सोचते रहे भला, मेरे प्रश्न को सुनते ही गिरगिट ने अपने प्राण क्यों और कैसे त्याग दिये, उसकी मृत्यु के लिये कहीं मैं तो जिमेदार नहीं, क्योंकि मेरे प्रश्न को सुनते ही वह नीचे गिरा और मर गया।

नारद बड़े भारी मन से वहाँ से लौटकर पुनः भगवान विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान को सारी घटना सुनाई। भगवान मुस्कुराये और बोले- 'कोई बात नहीं। तुम पुनः नगरसेठ के घर जाओ। उस सेठ के घर में एक तोता पिंजरे में दिखेगा। वह तोता भी सत्संग की महिमा जानता है। तुम उसी से पूछ लेना।' नारद जी पुनः उस सेठ के घर पहुँच गये और योगबल से पिंजरे में बंद तोते से फिर वही प्रश्न पूछा- 'सत्संग की क्या महिमा है?' देवर्षि नारद के प्रश्न सुनते ही उस तोते ने भी अपनी आँखें मूँद लीं और उसने भी प्राण त्याग दिये। अब तो नारद जी के आश्चर्य और विस्मय की कोई सीमा ही न रही।

वे तुरंत भगवान के पास लौट आये और कहने लगे- 'हे प्रभु! आपकी यह कैसी लीला है? यह तो मेरी समझ से परे है। क्या सत्संग का नाम सुनते ही प्राणत्याग देना ही सत्संग की महिमा है?' श्रीभगवान् बोले- 'नारद! इसका मर्म तुम्हें शीघ्र ही समझ में आ जायेगा। तुम इस बार नगर के राजा के दरबार में जाओ और उसके नवजात पुत्र से अपना प्रश्न पूछो।'

नारद जी सोचने लगे कि इस बार तो मेरी खैर नहीं। सत्संग का नाम सुनते ही यदि राजा का नवजात पुत्र मर गया तो मैं तो कहीं का न रहूँगा। मुझे राजा के कोप का सामना करना ही पड़ेगा पर भगवान का आदेश था, सो नारद जी वहाँ से हिम्मत करके चल पड़े। नारद जी जब राजमहल पहुँचे तो उनका बड़ा आदर-सत्कार हुआ। राजा को पहली संतान हुई थी। अतः पुत्र के जन्म पर उत्सव मनाया जा रहा था।

नारद जी के आग्रह करने पर राजा के पुत्र को नारद जी के पास लाया गया। इस बार नारद जी ने मन ही मन श्रीहरि भगवान विष्णु का स्मरण करते हुये पालने में लेटे हुये राजपुत्र से योगबल से वार्तालाप शुरू किया और पूछा- 'क्या आप मुझे सत्संग की महिमा सुना सकते हैं?'

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

वह नवजात शिशु हँस पड़ा और बोला- 'चंदन को अपनी सुगंध और अमृत को अपने माधुर्य का पता नहीं होता। ऐसे ही आप अपनी महिमा नहीं जानते। इसलिये आप मुझसे सत्संग की महिमा के विषय में पूछ रहे हैं। वास्तव में आपके क्षण मात्र के संग से मैं गिरगिट योनि से मुक्त हो गया। आपके ही दर्शन मात्र से मैं पुनः तोते की योनि से मुक्त होकर मनुष्य जन्म को प्राप्त कर सका और अब एक राजा के यहाँ मेरा जन्म हुआ है। प्रभु की कृपा से मिले आपके सान्निध्य से ही मेरे कितने ही कर्मबंधन कट गये, कितनी योनियाँ बिना भोगे ही कट गईं और मैं मनुष्य तन पाकर राजकुमार बन सका। हे देवर्षि! आप मुझे अब आशीर्वाद दें कि मैं मनुष्य जन्म में उत्तम कर्म करके मोक्ष पा सकूँ।'

नारद जी ने उसे आशीर्वाद दिया और पुनः भगवान विष्णु के पास पहुँचकर उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। प्रभु बोले- 'नारद! सचमुच सत्संग की बड़ी महिमा है। जैसी संगति होती है जीव को वैसी ही गति मिलती है। अच्छे आचरण के साथ यदि बुद्धि भी निर्मल हो तो सत्संग के प्रभाव से शुद्ध भक्ति जागृत हो जाती है फिर भक्त भगवान में ही लीन हो जाता है और पूर्णता को पा लेता है।'

इस पौराणिक कथा के अलावा भी विविध शास्त्रों में सत्संग की महिमा का गान किया गया है। विभिन्न धर्मों के गुरुओं, संतों ने भी सत्संग की महिमा का गान किया है। संत तुलसीदास जी ने तो रामचरितमानस की प्रस्तुत चौपाइयों में सत्संग की कैसी मधुर व प्रेरणादायी व्याख्या कही है-

सुनि समुझहि जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।
मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकहुँ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई।
सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
बालमीक नारद घटजोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना।
जो जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहुं बेद न आन उपाऊ॥
बिनु सतसंग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं।
फनि मीन सम निज गुन अनुसरहीं॥

अर्थात् जो मनुष्य संत समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते और समझते हैं और फिर अत्यंत प्रेमपूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष- ये चारों ही फल पा जाते हैं।

इस सत्संगरूपी तीर्थराज में स्नान का फल तत्काल ऐसा देखने में आता है कि कौए, कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करें क्योंकि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है। वास्तव में गोस्वामी जी कहना चाहते हैं कि जो व्यक्ति सत्संगरूपी तीर्थराज में, त्रिवेणी संगम में स्नान करता है उसकी प्रवृत्ति-प्रकृति भी बदल जाती है। यदि उसकी प्रकृति कौए जैसी है तो वह भी कोयल सदृश मधुर वाणी बोलने लगता है और बगुले की प्रवृत्ति वाले लोग भी प्रकृति से हंस सदृश बन जाते हैं। उनमें उचित-अनुचित का ज्ञान बोध हो जाता है, विवेक जाग जाता है।

तुलसीदास जी आगे कहते हैं कि वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपने-अपने मुखों से अपनी होनी (जीवन का वृत्तांत) कही है। जल में रहने वाले, जमीन पर चलने वाले और आकाश में विचरने वाले नाना प्रकार के जड़-चेतन जितने जीव इस जगत में हैं, उनमें से जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति और भलाई पाई है, उन सब को सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और राम की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में मिलता नहीं। सत्संगति आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि ही फल है और सब साधन तो फूल हैं।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे- पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है किंतु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान गुणों का ही अनुसरण करते हैं। वहीं कुसंग और सत्संग को लेकर संत कबीर दास जी ने भी कितनी गहन और गंभीर बातें कही हैं-

उजल बुन्द आकाश की, परि गयी भूमि विकार।
माटी मिलि गई कीच सो बिन संगति भौड छार॥
ब्राह्मन केरी बेटिया मांस शराब ना खाय।
संगति भयी कलाल की मद बिन रहा न जाय॥
संगति कीजै संत की, जिनका पूरा मान।
अंतोले ही देत हैं, राम सरीखा धान॥
जीवन, जोवन राज मद अविचल रहै ना कोय।
जो दिन जाये सतसंग में, जीवन का फल सोय॥

अर्थात् आकाश से गिरने वाली वर्षा की बूँदें निर्मल और उज्ज्वल होती हैं, किंतु जमीन पर गिरते ही गंदी हो जाती हैं। मिट्टी में मिलकर वह कीचड़ हो जाती हैं। इसी तरह आदमी भी अच्छी संगति के अभाव से बुरा हो जाता है। ब्राह्मण की बेटी माँस, शराब नहीं खाती थी, पर जब शराब बनाने वाले कलाल के साथ संगति हो गई तो बिना शराब के वह नहीं रह सकती है। इसलिये संतों की संगति करें, जिनका मन ज्ञान से परिपूर्ण हो। बिना मोल-भाव और तौल के ही वे राम जैसा अमूल्य धन प्रदान करते हैं।

यहाँ जीवन, यौवन, राजपाट, धन-संपत्ति, अभिमान कुछ भी स्थायी नहीं है किंतु जो दिन संतों के सत्संग में बीतते हैं वे ही जीवन का वास्तविक फल हैं। इस तरह से विविध शास्त्रों में सत्संग की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। सत्संग का अर्थ ही है सत्य का संग। जिन महापुरुषों ने सत्य का साक्षात्कार किया है, आत्मसाक्षात्कार या ईश्वर का साक्षात्कार किया है उनका संग ही सत्संग है। उनके ज्ञान का संग, सान्निध्य प्राप्त करना ही सत्संग है।

अखंड तपश्चर्या के उपरांत ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान के आलोक से आलोकित चित्त वाले योगियों, मुनियों, ऋषियों आदि के प्रत्यक्ष संग एवं उनके द्वारा कही गई या लिखी गई आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान की बातें जब स्वाध्याय के माध्यम से, सत्संग के माध्यम से व्यक्ति के अंतस में उतरती हैं तो सचमुच व्यक्ति के अंतस में अप्रत्याशित घटनायें घटने लगती हैं। बाहर से व्यक्ति तो पहले जैसा ही दीखता है पर उसकी प्रवृत्ति, उसकी प्रकृति में अभूतपूर्व परिवर्तन हो चुका होता है। आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के बारंबार चिंतन-मनन से, प्रभाव से उसका अंतस जगमगा उठता है। उसे जीवन का सच्चा बोध प्राप्त हो जाता है। रत्नाकर, अंगुलिमाल जैसे अगणित लोगों का जीवन सत्संग के प्रभाव से ही बदल सका था।

प्रसन्नता उसके साथ रहती है जो अन्तरात्मा के अनुकूल ही काम का चयन करते और उसमें पूरे मन से संलग्न होते हैं।

ऐसे योगियों, ज्ञानियों का यदि प्रत्यक्ष सान्निध्य प्राप्त न भी हो तब भी उनके द्वारा रचित साहित्य का, शास्त्रों का सेवन करके भी हम अपने अंतःकरण को ज्योतिर्मय कर सकते हैं। अब तक अगणित लोगों ने इसी आधार पर नवजीवन पाया है, नई दृष्टि पाई है, मुक्ति पाई है और यदि हम ऐसे ही महान योगियों का सचमुच समुचित मार्गदर्शन पाना चाहते हैं तब हमें वह दिव्यज्ञान व मार्गदर्शन उनके साहित्य में, उनके द्वारा प्रकट ज्ञान में अवश्य ही प्राप्त हो सकता है।

संत तुलसी, कबीर, मीरा, रैदास, गुरु नानक देव, गौतम बुद्ध, महावीर, आचार्य शंकर, गुरु गोरखनाथ, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, महर्षि रमण, स्वामी शिवानंद आदि महान योगी आज भौतिक शरीर में भले ही उपलब्ध न हों पर उनके द्वारा रचित साहित्य में, उनके द्वारा प्रकट ज्ञान में, विचार में हम आज भी उन्हें देख सकते हैं, पा सकते हैं, उनका सान्निध्य प्राप्त कर सकते हैं, उनका सत्संग प्राप्त कर सकते हैं। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव तो स्पष्ट रूप से कहा करते थे कि मैं व्यक्ति नहीं विचार हूँ। यदि कोई मुझे ढूँढ़ना चाहे तो वह मुझे मेरे साहित्य में, विचार में ढूँढ़ सकता है और मुझे पा सकता है।

इस प्रकार हम महापुरुषों का, ईश्वर का सत्संग नियमित रूप से निश्चित ही कर सकते हैं। सत्संग से ही हम सत्य की ओर अग्रसर होंगे तथा अंधकार से आलोक की ओर अग्रसर होंगे। मृत्यु से अमृत की ओर, अमरता की ओर अग्रसर होंगे क्योंकि ज्ञान के समान पवित्र करने वाला दुनिया में दूसरा कुछ भी नहीं है। •

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

रामधारी सिंह दिनकर की सांस्कृतिक चेतना

ओज, राष्ट्रीयता और निर्भीक वैचारिकता के प्रणेता राष्ट्रकवि दिनकर अपनी कविता में भावपरकता के आधार पर जिस सांस्कृतिक चेतना से प्रेरित हैं, वही उनकी महत्त्वपूर्ण कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' में विवेचन और विश्लेषण के रूप में समाहित है। यह ऐसा समाज-शास्त्रीय इतिहास है, जिसमें तटस्थता और वस्तुपरकता से निकले निष्कर्षों की प्रामाणिकता है और ममत्व तथा परत्व से अविचलित रहकर चिंतन की निष्ठा है। संस्कृति के इस भाष्य में दिनकर का अध्ययन विस्तार और संदर्भों का अंतरिक्ष चमत्कृत करता है। दिनकर भले ही इसे इतिहास नहीं बल्कि साहित्य का ग्रंथ कहें, पर वह भारतीय संस्कृति का क्रमिक इतिहास ही है और वह भी इतिहासलेखन की दृष्टिसंपन्नता के साथ।

दिनकर के विवेचन की पद्धति यह है कि वे विभिन्न मुद्दों पर विद्वानों के मतों का उल्लेख करते हैं और फिर उनमें से सही मत के पक्ष में निर्णय लेते हैं। वे तर्क और प्रमाण के बिना सपाट तरीके से निष्कर्ष तक नहीं पहुँचते। जवाहरलाल नेहरू ने इस पुस्तक की भूमिका में संस्कृति को मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि और सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना माना है। दिनकर ने कहा है कि भारतीय संस्कृति का मूल तत्व सामाजिकता है। अपने इसी विचार के प्रतिपादन में उन्होंने रवींद्रनाथ टैगोर की कविता उद्धृत की है-

हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य, हेथाय द्राविड़ चीन,
शक हूण दल पाठान मोगल एक देहे हलो लीन।

अर्थात् यहाँ आर्य हैं, द्रविड़ और चीनी वंश के लोग हैं। शक, हूण, पठान, मुगल यहाँ आए और सब एक ही शरीर में समाकर एक हो गए। इन सबके मिलन से भारतीय संस्कृति को अनेकों संस्कृतियों के योग से बना हुआ मधु कहा जा सकता है।

दिनकर भारतीय संस्कृति के इतिहास में चार बड़ी क्रांतियाँ मानते हैं। पहली क्रांति आर्यों के भारत आगमन और आर्येत्तर जातियों से उनके संपर्क के रूप में हुई। वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। इससे स्पष्ट है कि दिनकर ने आर्यों को भारत के बाहर से आगत माना है। दूसरी क्रांति यहाँ स्थापित धर्म के विरुद्ध गौतम बुद्ध के विद्रोह के साथ हुई। तीसरी क्रांति तब हुई, जब विजेताओं के धर्म के रूप में इस्लाम भारत पहुँचा और चौथी क्रांति यूरोप के आगमन के साथ हुई।

इन्हें ही दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय कहकर पुकारा है। प्रथम अध्याय में दिनकर भारतीय जनता की रचना पर विचार करते हुए सभ्यता के उद्गम तक जाते हैं। अश्वेत, औष्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, मंगोल, यूनानी, युची, शक, आभीर, हूण, तुर्क आए और सभी हिंदू-समाज के चार वर्णों में समाहित हो गए।

सी.एम. जोर के शब्दों में भारतीय हमेशा से ही अनेक जातियों के लोगों और अनेक प्रकार के विचारों के बीच समन्वय स्थापित करने को तैयार रहे हैं। इससे भारतीय संस्कृति में विश्वजनीनता उत्पन्न हुई। विश्व मानवता के अपूर्व चिंतक रोमाँ रोला मानते हैं कि अगर इस धरती पर कोई ऐसी जगह है, जहाँ सभ्यता के आरंभिक दिनों से ही मनुष्यों के सारे सपने आश्रय पाते रहे हैं तो वह जगह हिंदुस्तान है।

दिनकर ने ऋग्वेद का काल 6500 वर्ष पूर्व माना है। वे जाति-प्रथा और अंतरजातीय विवाह से उत्पन्न समन्वय की परख करते हैं और शिव, राम, कृष्ण भक्ति और विभिन्न देवताओं की मान्यता पर विचार करते हैं। वे आर्य और आर्येतर के संबंधों का विश्लेषण करते हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृति की रचना किस तरह परस्पर प्रभावों से होती है। द्रविड़ों का मूल निवास, कहाँ एजियन समुद्र के पास था, उनमें सिंहारूढ़ देवी माता और वृषभारूढ़ देव पिता की कल्पना थी। द्रविड़ों में यौवन युद्ध और वीरता के एक अलग देवता थे मुरुगन। आर्यों में कार्तिकेय तथा द्रविड़ों में मुरुगन हैं।

संपूर्णानंद जी ने गणेश जी को आर्येतर देव माना है। 'गणानांत्वा गणपति ग्वं' में गणपति का अर्थ गणेश नहीं है। उनके अनुसार यह गणपति अश्वमेध का अश्व है। 'शक' और 'कुहू' शब्द, 'पुनर्जन्म की कल्पना' 'गंगा शब्द', 'सिंदूर, नारियल तथा पान' आग्नेय जाति से आए हैं। प्रेम-पूजा भी आग्नेय है- ऐसा दिनकर अपने गंभीर शोध में प्रतिपादित करते हैं।

आर्य और आर्येतर समन्वय पर विचार करते हुए दिनकर कहते हैं कि आर्यों की जाति-प्रथा को अन्य जातियों ने भी स्वीकार कर लिया। यह सांस्कृतिक समन्वय की ओर पहला कदम था। आर्य और द्रविड़-मिलन भी इसी तरह का समन्वय था। सात नगरियों और सात नदियों को साथ रखना भौगोलिक एकता का उदाहरण है।

दिनकर अपने वैचारिक सत्य के साथ लिखते हैं कि हिंदू-संस्कृति का आज जो रूप है, उसके भीतर प्रधानता उन बातों की नहीं है, जो ऋग्वेद में लिखी मिलती हैं बल्कि हमारे बहुत से अनुष्ठानों और हमारी कई रीतियों का उल्लेख वेदों में नहीं मिलता। विष्णु, शिव, रुद्र इत्यादि देवताओं तथा चावल, नारियल, सिंदूर जैसी अनेक वस्तुओं को जब दिनकर बहिरागत मानते हैं तो वे आज की बनी धारणा को झकझोर देते हैं।

वे कहते हैं कि सिंदूर नाग लोगों की वस्तु है। इसीलिए उसे 'नाग-गर्भ' और 'नाग-संभव' कहा गया। वह सामाजिक समन्वय में नारियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानते हैं और राम कथा का देश की एकता में बड़ा महत्त्व निर्धारित करते हैं।

दूसरे अध्याय में दिनकर बौद्ध धर्म का परीक्षण करते हैं। स्वयं हिंदुत्व में ही वेदों के बाद उपनिषदों का विवेच्य बदल गया है। भारतीय संस्कृति का पुराना रूप वही है पर आज नास्तिक और भौतिकवादियों को छोड़कर अधिकतर हिंदू परलोकभय मानते हैं। वैदिक ऋषि मृत्यु के भीत नहीं हैं। उनके विचार में स्वर्ग-नरक नहीं है, वे आत्मा, पुनर्जन्म और कर्मफल के बारे में ज्यादा नहीं सोचते। वेदों का वातावरण उल्लासपूर्ण एवं पवित्र है। उनमें प्रार्थनाएँ हैं कि हमारे बैल पुष्ट हों, अश्व बलवान हों, फसलें अच्छी हों और शत्रुओं पर हमें विजय मिले।

इस आशावादी और बहुदेववादी समाज के बाद उपनिषद् काल में सूक्ष्म चिंतन आ गया। मोक्ष जीवन का परम ध्येय बन गया। वैराग्य और संन्यास माध्यम बन गए। वैदिक जीवन में सांसारिकता प्रेय है। उपनिषद् प्रेय को छोड़कर श्रेय की ओर बढ़े। दिनकर कहते हैं कि वेदों के समय का धर्म प्रकृति के तत्वों को सजीव मानने वाले भावुक मनुष्य का धर्म है। हिंसा और अहिंसा के द्वन्द्व में जैन धर्म और अहिंसा को प्रतिष्ठा मिली। बौद्धों ने जाति प्रथा को चुनौती दी और उनके मतानुसार कर्म की महत्ता को श्रेय मिला। दिनकर ने इस समय के अंतःसंघर्षों और परस्पर टकरावों पर तटस्थ विचार करते हुए कहा कि इसके बावजूद हिंदुत्व और बौद्ध धर्म में समानता है। बौद्ध धर्म का महत्त्व यह भी है कि इसी समय बाहरी दुनिया से हमारा प्रत्यक्ष संपर्क हुआ। बौद्ध विदेशों में गए।

तीसरा अध्याय हिंदू-मुस्लिम संबंधों की भूमिका का विमर्श है। दिनकर लिखते हैं कि इस्लाम अपने प्रगतिशील युग में भारत में नहीं आया। वह अपने आरंभ में बहुत ऊँचे धरातल पर था, लेकिन जब हूण, तुर्क और मंगोल भी मुसलमान हुए तो उन जातियों की बर्बरता का उस पर प्रभाव पड़ा। बाबर ने हुमायूँ को जो वसीयतनामा किया था, उसमें लिखा था 'हिन्दुस्तान में अनेक धर्मों के लोग बसते हैं। भगवान को धन्यवाद दो कि उन्होंने तुम्हें इस देश का राजा बनाया है। तुम तअस्सुब यानी सांप्रदायिकता से काम न लेना, निष्पक्ष होकर न्याय करना और सभी धर्मों के लोगों की भावना का ख्याल रखना।'

मुस्लिम समाज ने हिंदुओं के अनेक रीति-रिवाज ग्रहण कर लिए। कला और साहित्य में भी दोनों में आदान-प्रदान हुए। हिंदुओं की जीवन शैली भी अनेक स्वीकारों के लिए तत्पर रही। इस्लाम के स्वरूप और उसके प्रभाव पर विचार करते हुए दिनकर कहते हैं कि हिंदुओं में धार्मिकता की गलत धारणा, पाखंड, देश में एकत्व के भाव का अभाव तथा बाहर जाने को धार्मिक दृष्टि से निषिद्ध मानना वे कारण हैं, जिनसे उनका पतन हुआ।

दिनकर ने इस पुस्तक को 'संस्कृति के चार अध्याय' कहा है। संस्कृति समावेशी शब्द है। उसमें जीवन शैली, उदात्त आदर्श, कला, साहित्य इत्यादि विभिन्न आयाम समाहित हैं। इस्लाम के भारत आगमन और मुस्लिम शासन के वर्षों में भारत की स्थिति

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

कई दृष्टियों से विशिष्ट है। इस समय धार्मिक कट्टरता के अतिरेक से अन्याय भी हुए और उसके विपरीत हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों के परस्पर आदान-प्रदान भी हुए।

दिनकर ने हिंदू धर्म में भक्ति आंदोलन के उदय का वर्णन करते हुए तीन तरह के कवियों का उल्लेख किया है। एक वर्ग में जायसी, दूसरे में कबीर और तीसरे में विद्यापति और तुलसी। वह कबीर, मीरा, बोधा और घनानंद के भावुक पक्ष पर प्रेम के सूफी स्वरूप का प्रभाव मानते हैं। इसी काल में उर्दू का जन्म हुआ। भाषाओं में शब्दों के आदान-प्रदान हुए और सांस्कृतिक परस्परता के कारण सामाजिक संस्कृति का स्वरूप उभरा।

चौथे अध्याय में भारतीय संस्कृति और यूरोप की अंतःक्रिया का विवेचन है। यूरोप के विभिन्न देशों के भारत आगमन, भाषा और संस्कृति पर पड़ रहे वांछित और अवांछित प्रभावों, नवजागरण के समाज-सुधारों, वैज्ञानिक दृष्टि के उदय तथा टूटती रूढ़ियों का आयान ही इस युग का कथानक है। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, धर्म समाज, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद, गाँधी इत्यादि के माध्यम से व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में बौद्धिकता और तर्क का अभिनव पाठ लिखा जा रहा था। प्राचीन भारत में आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के मेल से निकली संस्कृति मध्य युग में मुसलमानों के साथ संवादरत रही। अब एक और भिन्न संस्कृति के साथ उसका संभाषण चला। विज्ञान और अध्यात्म दोनों समाज को अपनी तरह निर्धारित कर रहे थे। विचार, कला, साहित्य और भूगोल का एक व्यापक विषय हमारे ज्ञान के नए गवाक्ष खोल रहा था। एक सर्वथा भिन्न संस्कृति के साथ अब हमारा सामना हो रहा था। अभी तक मुस्लिम शासन और जीवन पद्धति से हमारी असमानता, द्वंद्व थी। अब यूरोपीय संस्कृति से भी हमारी भिन्नता प्रभावित हो रही थी। अंग्रेजी शासकों की सांस्कृतिक वर्चस्विता भी हो रही थी और सामंजस्य भी। गुलामी के खिलाफ अभियान भी चला और भाषा, वेशभूषा, खान-पान भी प्रभावित हुआ।

कवि दिनकर की रचनाशीलता का एक अलग औदात्य है- संस्कृति के चार अध्याय। ऐसा लगता है जैसे कि भावना के कलश में ज्ञान का महासागर भर दिया गया हो। दिनकर की सांस्कृतिक चेतना एक ऐसे व्यक्ति की अनुभूति है, जिसे निजता प्रिय है, पर उसका विवेक सजग है। वे अपने गुण-दोषों का परीक्षण करते हुए इतिहास लेखन की निष्पक्षता का उदात्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। संस्कृति का ऐसा विमर्श करते हुए दिनकर एक व्यक्ति नहीं रह जाते, बल्कि संदेहों और भ्रमों से परे एक सर्व-समावेशी संस्थान बन जाते हैं। उनका अपरिमित ज्ञान विस्मित भी करता है और आश्वस्त भी। •

जब राजा ययाति अपने मुख से अपनी तपस्या की प्रशंसा और अन्य तपस्वियों का तिरस्कार करने के कारण पुण्य क्षीण हो सिद्धों के लोक से नीचे गिरने लगे तो राजा अष्टक ने उन्हें गिरते देख कहा- 'महाराज! समस्त देवताओं को साक्षी बना मैं अपना समस्त पुण्य आपको अर्पित करता हूँ, आपका पतन न हो।' ययाति मुस्कराए और कहने लगे- 'नरश्रेष्ठ! दान केवल वेदवेत्ता ब्राह्मण या दीन ही ले सकते हैं। मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न दीन। इसलिए हे पुण्यशील अष्टक! मुझे नीचे गिरने दो।'

इसी समय पास खड़े राजा प्रवर्दन ने भी ययाति को अपना पुण्य भेंट करना चाहा। ययाति के फिर अस्वीकार करने पर राजा वसुमान ने आगे बढ़कर कहा-'सज्जनों! ययाति दान ग्रहण नहीं करते, आप वृथा कष्ट न करें।' फिर ययाति की ओर मुड़कर बोले- 'महाराज! आप एक मुट्ठी तृण मेरे लिए इकट्ठा कर दें। मैं मूल्य रूप में अपना समस्त पुण्य देता हूँ, आपका पतन न हो।' ययाति हँसे और बोले-'पुण्यशील वसुमान! उचित मूल्य से कम में किसी वस्तु को लेना भी एक प्रकार का दान लेना है। मैं न तो ब्राह्मण हूँ और न दीन, अतः मुझे नीचे गिरने दो। मैंने जो कर्म किए हैं उनका फल मुझे पाने दो, क्योंकि यही विधाता की नीति है।'

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

षोडश संस्कारों की भारतीय परम्परा एवं इसका पुनर्जीवन

भारतीय चिंतन के अनुसार जन्म से सभी जीवात्माएँ पूर्वजन्मों का प्रभाव लेकर आती हैं, जिनमें कई तरह की अवांछनीय परतें भी चढ़ी होती हैं। संस्कारों की प्रक्रिया जीवन के विभिन्न मोड़ों पर क्रमिक रूप से इन परतों को उतारती है, व्यक्तित्व को परिष्कृत करती है व उसे मानवीय गरिमा के अनुकूल जीने के लिए तैयार करती है तथा मनुष्य को नर पशु-नर कीटक से महामानव-देवमानव बनने की ओर प्रवृत्त करती है।

भारतीय संस्कृति में व्यक्तित्व के विकास का एक सुनिश्चित विधान रहा है, जो उसे जीवन के परम लक्ष्य तक ले जाता है। इसके लिए यहाँ जीवन को विभिन्न कालखण्डों में विभाजित किया गया, यथा- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। ब्रह्मचर्य जीवन का पहला पड़ाव था, जिसके अंतर्गत किशोर एवं युवा का शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित किया जाता था, उसे गुरुकुल में एक नैष्ठिक अनुशासन में ज्ञान-विज्ञान का अर्जन कराया जाता था।

इस शिक्षा के पूरा होने के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। सन्तान उत्पति के साथ अपने पितृ ऋण से मुक्त होता हुआ, बच्चों को पढ़ा-लिखा कर स्वावलम्बी एवं संस्कारसंपन्न बनाकर फिर जीवन के तीसरे पड़ाव वानप्रस्थ में प्रवेश करता था। गृहस्थ के दायित्वों से मुक्त एकांत में साधना करता तथा अपने अनुभव एवं ज्ञान से समाज को लाभान्वित करता था। अपने सामाजिक दायित्व के पूर्ण होने पर जीवन के अंतिम आश्रम संन्यास में प्रवेश करता था। यह समाज-संसार से पूरी तरह से विरक्त ईश्वरोन्मुख जीवन होता था। अपना पूरा अस्तित्व लोक कल्याण हित होम कर मानव जीवन का परम उद्देश्य पूरा करते हुए शरीर छोड़ने की तैयारी के साथ जीवन की महायात्रा पर व्यक्ति इन संस्कारों के माध्यम से अपने कदम रखता था।

जीवन के इन अहम पड़ावों के अनुरूप व्यक्ति को जीवन के मार्मिक मोड़ों पर उचित दिशाबोध देने व अगले पड़ाव की तैयारी के लिए ऋषियों ने मानव प्रकृति के मर्म को समझते हुए विभिन्न संस्कारों का विधान रखा, जिनकी संख्या कभी 48 थी, लेकिन इनमें 16 प्रमुख रहे, जो षोडश संस्कार के नाम से जाने जाते हैं। ये इस प्रकार से थे- 1.गर्भाधान, 2.पुंसवन, 3.सीमान्तोन्नयन, 4.जातकर्म, 5.नामकरण, 6.निष्क्रमण, 7.अन्नप्राशन, 8.चूड़ाकर्म, 9.कर्णवेध, 10.विद्यारम्भ, 11.उपनयन-यज्ञोपवीत 12.वेदारम्भ, 13.केशान्त, 14.समावर्तन, 15.विवाह एवं 16.अन्त्येष्टि। सार रूप में उनका मर्म कुछ इस प्रकार से था।

गर्भाधान संस्कार श्रेष्ठ संतान हेतु पावन भाव के साथ किए गए समागम की प्रक्रिया थी, जो एक दायित्वबोध के साथ वैदिक मंत्रों के साथ सम्पन्न होती थी। पुंसवन संस्कार गर्भ में भ्रूण के विकसित होने पर तीसरे माह में सम्पन्न किया जाता था, जिससे कि स्वस्थ एवं गुणसम्पन्न संतान का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके। सीमान्तोन्नयन संस्कार प्रायः चौथे, छठें या आठवें माह में सम्पन्न किया जाता था, जिसमें पति-पत्नी के केश सँवारता था व घर की महिलाएँ सभी मिलकर उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देते। ये एक तरह से माता के सुरक्षित गर्भधारण एवं प्रसूति को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से किया गया संस्कार था। ये तीनों जन्म से पूर्व के संस्कार थे।

जातकर्म-संस्कार शिशु के जन्म पर गर्भनाल के कर्तन व नाभिबन्धन की प्रक्रिया थी, जिसमें वैदिक मंत्रों के साथ शिशु को शहद एवं घी के मिश्रण को चटाया जाता था। इसका उद्देश्य शिशु के शारीरिक विकास, बौद्धिक उन्नयन एवं दीर्घायुष्य को सुनिश्चित करना रहता था। इसके साथ माँ के गर्भनाल से लिए गए आहार की शुद्धि का भी भाव रहता था व इसके बाद माँ, शिशु को अपना दुग्धपान करवाती थी। नामकरण संस्कार ग्याहरवें दिन सम्पन्न किया जाता था, जिसमें पुरोहित या पिता शिशु के कान में नाम का उच्चारण करते। साथ ही प्रकाश एवं ऊर्जा से भरे जीवन के लिए सूर्य के भी दर्शन कराए जाते।

नाम को नक्षत्र एवं राशि के आधार पर ही रखा जाता था और नाम के महत्त्व को देखते हुए गुणवाचक एवं प्रेरक नाम ही रखे जाते थे। निष्क्रमण संस्कार चौथे माह में सपन्न किया जाता था, जिसमें शिशु को घर के बाहर प्रकृति के दर्शन कराया जाते थे जिससे कि उसे सूर्य की प्रखरता-तेजस्विता तथा चाँद की शीतलता-सौम्यता प्राप्त हो सके। इस संस्कार का उद्देश्य विराट प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड के दर्शन के साथ सामाजिक परिवेश से भी उसका परिचय कराना था। अन्नप्राशन संस्कार के साथ शिशु को ठोस आहार दिया जाता था। 'जैसा अन्न-वैसा मन' के अनुरूप स्वास्थ्यवर्धक एवं संस्कारित अन्न से शिशु के तन, मन एवं आत्मा का विकास हो, ऐसा शिक्षण इस संस्कार में निहित रहता था। यह संस्कार छठें माह में सम्पन्न किया जाता व इसमें प्रतीक के रूप में खीर को खिलाया जाता था।

चूड़ाकर्म संस्कार अर्थात् मुण्डन संस्कार प्रथम, तृतीय या पंचम वर्ष में सपन्न किया जाता था, जिसमें शिशु के बालों को काटकर कुशा पर रखा जाता था, गौमूत्र से शुद्ध कर उन्हें फिर गंगाजी के किनारे या गौशाला के पास गाड़ा जाता था। इसे दीर्घायु, पवित्रता और सौंदर्य में वृद्धिकारक माना जाता था। माँ के गर्भ में नौ माह रहने पर शिशु के बालों में संभावित कई तरह के विषाणुओं की सफाई के साथ पूर्वजन्मों के कुसंस्कारों के शोधन का इसमें भाव रहता था।

कर्णभेदन संस्कार का अपना धार्मिक एवं वैज्ञानिक आधार है, जिसमें कान के निचले हिस्से में सोने या चाँदी की शलाका से छेद किया जाता, जो आयुविर्ज्ञान के अनुसार कई रोगों से जातक की रक्षा करता था। इसे एक्यूपंक्चर पद्धति का एक रूप समझा जा सकता है। इसे यज्ञोपवीत से पूर्व पाँच वर्ष के अन्दर सम्पन्न किया जाता था। उपरोक्त छः संस्कार जन्म के बाद बाल्यावस्था के थे।

इसके उपरान्त विद्यारभ संस्कार को पाँचवें वर्ष सपन्न किया जाता, जब शिशु कुछ सीखने की ग्रहणशील अवस्था में होता था। प्राचीनकाल में गुरुकुल जाने से पूर्व घर पर ही यह संस्कार माता-पिता एवं आचार्य द्वारा सपन्न किया जाता था, जिसमें अपनी मातृभाषा में अक्षरज्ञान के साथ वैदिक कथाओं का वाचन किया जाता था, जिससे कि गुरुकुल में अध्ययन सरल हो सके। उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार बालक के बौद्धिक एवं मानसिक विकास हेतु सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार था।

यज्ञोपवीत को गायत्री महामंत्र की जीवन्त सूत्ररूप प्रतिमा एवं व्रतबन्धन का प्रतीक माना जाता था। प्राचीनकाल में इसे वर्णानुसार आठवें, ग्याहरवें या बारहवें साल में धारण किया जाता था; जिसके पश्चात् बालक विधिवत वैदिक शिक्षा के लिए गुरुकुल चले जाते थे। ब्रह्मचर्य अवस्था में एक जनेऊ धारण किया जाता था तथा शादी के बाद दो। मुंडन के साथ इसे सम्पन्न किया जाता था, जिसके अंतर्गत शिखास्थापना महत्त्वपूर्ण अंग रहता था। शिखा को गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा एवं संस्कृति की धर्मध्वजा का पावन प्रतीक माना जाता था। पूरे संस्कार का उद्देश्य संयमित एवं अनुशासित जीवन जीने के साथ आध्यात्मिक जीवन की ओर बालक को प्रवृत्त करना रहता था।

यज्ञोपवीत के बाद बालक को गुरुकुल में भेजा जाता था, जहाँ उसका वेदारम्भ संस्कार सम्पन्न किया जाता। वेद ज्ञान का पर्याय हैं और ज्ञान को भारतीय परपरा में सबसे पवित्र माना गया है। ब्रह्मचारी को अनुशासित व्रतशील जीवन में दीक्षित किया जाता था तथा उसका जीवन ज्ञानार्जन के लिए समर्पित होता था। केशान्त संस्कार अध्ययन पूरा होने पर आचार्य की पावन उपस्थिति में सम्पन्न किया जाता था। यह गुरुकुल को छोड़ने व गृहस्थाश्रम में प्रवेश के बीच की कड़ी रहता था। वेद-पुराण एवं ज्ञान की विविध धाराओं में निष्णात होने के बाद मंत्रों के उच्चारण के साथ केशों को उतारा जाता था।

समावर्तन संस्कार का अर्थ घर वापिस लौटना होता था। केशांत संस्कार के बाद स्नान सम्पन्न किया जाता था, जिसे समार्वतन संस्कार कहा जाता था। आठ अलग-अलग बर्तनों में रखे औषधीय जल में उनको स्नान कराया जाता था। ब्रह्मचारी के रूप में धारण की गई व्रत की प्रतीक मेखला एवं दण्ड का विसर्जन किया जाता था। संस्कार सम्पन्न होने पर आचार्य प्रशस्ति पत्र देते थे व तब युवक को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिए योग्य माना जाता था, जिसके निमित विवाह संस्कार की व्यवस्था थी।

विवाह संस्कार मनुष्य जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता था। यज्ञोपवीत से लेकर समावर्तन तक ब्रह्मचर्य व्रत को

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

धारण किए व्यक्ति का विवाह प्रायः 25 वर्ष में होता था; जिसमें पति-पत्नी के सम्बन्ध को सामाजिक स्वीकृति मिलती व दो आत्माओं के पवित्र मिलन के साथ वे गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे। विवाह के कर्मकाण्ड में वर-वधू दोनों अग्नि की साक्षी में सात फेरे लगाते हुए भावी जीवन के संकल्प लेते थे तथा आजीवन अपने कर्तव्यों के पालन व दूसरों के अधिकार के सम्मान का आश्वासन देते थे।

जीवन के अंत में अन्त्येष्टि या अग्नि संस्कार जीवनचक्र के अंतिम चरण का संस्कार था। इस अंतिम संस्कार में मृत देह को वेदमंत्रों के साथ अग्नि में समर्पित किया जाता था। माना जाता था कि इसके साथ मृतात्मा की सारी अधूरी इच्छाएँ एवं कामनाएँ शांत हो रही हैं। मृत शरीर को तीर्थजल या गंगाजल में स्नान कराकर समिधाओं के बीच रखा जाता था एवं विधि-विधान के साथ बड़ा पुत्र अग्नि देता व अग्नि संस्कार सपन्न हुआ करता था। अंततः अस्थियों को एकत्र कर तेरहवें दिन इनका पावन सरोवर या गंगाजल में विसर्जन किया जाता था। इसके पूर्व पिण्डदान एवं श्राद्धकर्म के साथ मृतात्मा को विदाई दी जाती थी। माना जाता है कि इस तरह से मृतात्मा को शांति मिलती व उसके देह से जुड़े कुसंस्कारों का भी शमन हो जाता था।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने वर्तमान युग की परिस्थितियों को देखते हुए इनमें संशोधन किया व इन सोलह संस्कारों में से दस प्रमुख संस्कारों को स्थान दिया, जो इस प्रकार हैं- 1. पुंसवन, 2. नामकरण, 3. अन्नप्राशन, 4. मुण्डन (चूड़ाकर्म), 5. विद्यारंभ, 6. यज्ञोपवीत, 7. विवाह, 8. वानप्रस्थ, 9. अन्त्येष्टि, 10. मरणोत्तर-श्राद्ध कर्म। सामयिक प्रासांगिकता एवं उपयोगिता को देखते हुए गर्भाधान, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, निष्क्रमण, कर्णभेदन, केशान्त, समावर्तन जैसे संस्कारों को हटा दिया गया बल्कि इनके मूलभाव को दूसरे संस्कारों के साथ समाहित करते हुए षोडश संस्कारों की संख्या दस तक सीमित कर दी गयी तथा दो नए संस्कार समयानुकूल उपयोगी मानते हुए इनमें जोड़े गए, यथा - 11. जन्म दिवस एवं 12. विवाह दिवस।

वर्तमान युग में जब संस्कारहीन पीढ़ियाँ हमारी नियति बनती जा रही हैं, परिवार व्यवस्था चरमरा रही है, ऐसे में संस्कारों की परम्परा को व्यापक स्तर पर प्रचलित करने की आवश्यकता है। इस युग में इस पुरातन गौरवमयी परंपरा के सरलीकृत एवं प्रभावशाली स्वरूप को युगऋषि पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने जिस प्रकार पुनर्जीवित किया है, उसे वर्तमान युग की सबसे बड़ी सांस्कृतिक देन कहा जा सकता है, जिसे घर-घर में स्थापित करने एवं इसका अनुकरण करने की आवश्यकता है। इनके साथ हर घर नररत्नों एवं महामानवों की खदान बनेगा। संस्कारयुक्त पीढ़ी का जन्म होगा, समाज सशक्त बनेगा और राष्ट्र विश्व में पुनः अपने सांस्कृतिक गौरव एवं आध्यात्मिक आभा के साथ अपनी सनातन गरिमामयी स्थिति में प्रतिष्ठित होगा। • • •

एक दिन एक गीदड़ गड्ढे में गिर गया। बहुत उछलकूद की, परंतु बाहर न निकला सका। अंत में हताश होकर सोचने लगा कि अब इसी गड्ढे में मेरा अंत हो जाना सुनिश्चित है। तभी एक बकरी को मिमियाते हुए सुना। तत्काल ही गीदड़ की कुटिलता जाग उठी। वह बकरी से बोला- यहाँ अंदर खूब हरी-हरी घास और मीठा-मीठा पानी है। आओ, जी भरकर खाओ और पानी पीओ। बकरी गड्ढे में कूद गयी। चालाक गीदड़ बकरी की पीठ पर चढ़कर गड्ढे से बाहर निकल आया और हँस कर बोला- तुम बड़ी बेवकूफ हो, मेरी जगह खुद गड्ढे में मरने के लिए आ गयी। बकरी बड़ी सरल भाव से बोली- गीदड़ भाई, मैं परोपकार का मूल्य समझती हूँ। मेरी उपयोगिता समझ कर कोई न कोई मुझे निकाल ही लेगा, पर तुम्हारी कुटिलता के कारण तुहारी सहायता कौन करता?

संन्यास

परमात्मा के प्रति समर्पण का अर्थ परमात्मा को, उनके समग्र रूप को पूर्णता के साथ अंगीकार करने की उद्घोषणा है। जो परमात्मा को स्वीकार करता है, वह उनके बनाए संसार को भी स्वीकार करता है और जो परमात्मा को तो स्वीकार करता है परंतु उनके बनाए संसार को अस्वीकार करता है तो ऐसा कह सकते हैं कि उसने अभी समर्पण किया ही नहीं, समर्पण का आडंबर मात्र किया है।

यदि परमात्मा को जगत् निर्माण की अपनी इस लीला में निःसारता दिखती तो वह स्वयं ही कब का संसार बनाना छोड़, संन्यास ले चुका होता, परंतु इस सृष्टि चक्र का यथावत चलना यही बताता है कि संन्यास का सच्चा अर्थ संसार से भागने से नहीं, मानसिक बंधनों से मुक्तता से है।

संसार व संन्यास मनःस्थितियाँ भर हैं। मन जुड़ा हुआ है तो मनुष्य हिमालय के शिखर पर भी उन्माद व उद्वेग के कारण ढूँढ लेगा और मन, मुक्त हो चुका हो तो मनुष्य, राजा जनक की तरह, राजगद्दी पर भी शांति व समाधि के सोपान तैयार कर लेगा। सच्चा संन्यास, संसार से पलायन नहीं सिखाता वरन् संसार को परमात्मा की अभिव्यक्ति मानकर, उसमें अपने कर्तव्य का निर्वहन करना सिखाता है।

जो संसार से पलायन की सीख देते हैं, उनका कहना कुछ इस प्रकार है कि कवि को तो सम्मानित करो पर उसकी कविता को कूड़े में डाल दो। परमात्मा के प्रति समर्पण सच्चा हो तो, संन्यासी पलायन नहीं दायित्व का निर्वहन करना सीखता है, निष्काम कर्म को करना सीखता है और साथ ही लोकोपयोगी व जनसेवी बनना सीखता है।

जीवन की समस्या का समाधान पलायन में नहीं है- यद्यपि ऐसा करना सरल जरूर प्रतीत होता है। संसार के आवेगों के मध्य, उसकी दुष्कर राहों के मध्य जो निष्काम कर्म करते हुए परमात्मा को पुकारना सीख जाता है- उसका वैराग्य सच्चा व दृढ़ होता है एवं इन्हीं क्षणों में हमारी साधनात्मक मनःस्थिति की सच्ची परीक्षा भी संभव हो पाती है। इस संबंध में एक प्यारी कथा आती है। कहते हैं कि एक हत्यारा एक फकीर को मारने पहुँचा। उसने उन्हें मारने के लिए छुरा हाथ में लिया ही था कि फकीर ने उठकर हत्यारे की चरणवंदना करी। यह देख हत्यारा घबराया एवं बोलने लगा कि- अरे! मेरे पैर क्यों छू रहे हैं? फकीर बोले- तुम्हारे पैर कौन छूता है? तुम्हें तो हम जानते भी नहीं। पैर तो मैं उस परमात्मा के छू रहा हूँ जो आज तुम्हारा भेष बनाकर मुझसे मिलने आया है। मुझे वह धोखा न दे सकेगा। हत्यारे को वहाँ से खाली हाथ जाना पड़ा।

परमात्मा को समग्र रूप से स्वीकार करने वाला सच्चा भक्त भी बनता है, साधक भी बनता है, संन्यासी भी बनता है। उनके संसार से पलायन करने वाला अभी उन्हें पूर्ण रूप से समझ नहीं पाया है।

•••

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। वह उत्थान और पतन में से किसी को भी चुन सकता है। स्वर्ग या नरक में से किसी भी दिशा में चल पड़ने के लिए पूरी तरह स्वतन्त्र है। परिस्थितियों को दोष देना व्यर्थ है। वे तो मनःस्थिति के अनुरूप ही ठहरती और बदलती रहती हैं। दूसरों का न सही परंतु अपना भविष्य निर्माण करने के सम्बन्ध में कोई बात अपनाना और किसी राह पर चलना पूरी तरह अपनी आकांक्षा और निर्धारण पर अवलम्बित है।

-परमपूज्य गुरुदेव

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

चेतना की शिखर यात्रा-214

राजनीति से हटकर

विगत अंक में आपने पढ़ा कि अपने शिष्य ऋषिप्रसाद की अवतार तत्व संबंधी जिज्ञासा के समुचित समाधान हेतु स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ने उसे सहयोगी राधिका रमण के साथ पूज्यवर के सान्निध्य में ज्ञानार्जन के लिए शांतिकुंज भेजा। शांतिकुंज आगमन के उपरांत पूज्य गुरुदेव से हुई संक्षिप्त भेंट में पूज्यवर ने सामयिक विषम परिस्थितियों में अवतार के अवतरण की उपादेयता को स्पष्ट किया व साथ ही इस विषय से संबंधित विस्तृत ज्ञान पाने के लिए ऋषिप्रसाद को शांतिकुंज के दिव्य वातावरण में अन्वेषण करने का निर्देश दिया। संध्या में भ्रमण के दौरान शांतिकुंज परिसर के निकट ही गंगा दर्शन के लिए पहुँचे ऋषिप्रसाद की मुलाकात भारत में प्रथम कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सत्यभक्त जी से हुई। उन्होंने बातचीत के क्रम में उसको न केवल उसके गुरु स्वामी अखण्डानन्द जी के जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों से अवगत कराया वरन् अपने निजी अनुभवों के आधार पर अवतार तत्व की मीमांसा भी की। शांतिकुंज में रहकर आश्रम दिनचर्या के क्रम में पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के दर्शन-प्रणाम से नित्य ही मिल रहा आशीष उसके मन के उहापोह को शांत करता उसे अपने अभीष्ट की दिशा में परोक्ष मार्गदर्शन दे रहा था। आइये पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ....

यह सिर्फ संयोग ही नहीं था कि राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी शान्तिकुञ्ज आए और कुछ ही देर बाद इसी राज्य में विपक्ष के प्रमुख प्रभावशाली नेता भैरोसिंह शेखावत के हरिद्वार पहुँचने की खबर मिली। यह संदेश भी कि वे भी गुरुदेव से मिलने आ रहे हैं। यह 1977 के शुरुआती दिनों की बात है। जनवरी महीने की कोई तारीख थी। शेखावत जी तब राज्यसभा के सदस्य थे। देश में आपातकाल लागू था। कुछ माह पूर्व केन्द्र सरकार ने लोकसभा की अवधि एक वर्ष के लिए और बढ़ा दी थी और आम चुनाव साल भर के लिए टल गए थे। शेखावत जी तब मध्यप्रदेश से राज्यसभा सदस्य थे और राजस्थान में जनसंघ (बाद में भारतीय जनता पार्टी) की रीढ़ समझे जाते थे। कहना कठिन है कि उन्हें राजस्थान के मुख्यमंत्री के शान्तिकुञ्ज आने की सूचना थी या नहीं? यही बात हरिदेव जोशी के लिए भी कही जा सकती है। लेकिन शान्तिकुञ्ज के जीवन साधना सत्र में शामिल परिजनों का मानना था कि यह सिर्फ संयोग ही नहीं है।

इस मिलन के लिए नियति का कोई विधान या गुरुदेव की कोई सूक्ष्म प्रेरणा विद्यमान थी। उन दिनों और आज भी सत्तापक्ष और विपक्ष के नेता एक दूसरे संगठनों के सिद्धान्तों, नीतियों और कार्यक्रमों के कठोर आलोचक होते हैं। कभी कदा तो यह विरोध बैर और शत्रुता जैसा दिखाई देने लगता है। विरोध और आलोचना के जैसे संदेश सामने आते हैं, उन्हें देखते हुए तो यह भी लगता है कि नेताओं में भी छत्तीस का आंकड़ा रहता होगा। कुछ हद तक यह बात सही भी है। निजी तौर पर उनमें कितना ही मेलमिलाप रहता हो लेकिन सार्वजनिक अवसरों और स्थानों पर वे कम ही मिलते जुलते हैं। इन स्थितियों से परिचित और अपने विश्वासों में मगन शिविरार्थी कांग्रेस और जनसंघ के दो बड़े नेताओं के आगे-पीछे शान्तिकुञ्ज आने की सूचना से विस्मित थे।

मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी शान्तिकुञ्ज पहुँचने पर पाँच-सात मिनट तक स्वागत कक्ष में रुके और फिर गुरुदेव के पास चले गए। इसके पंद्रह बीस मिनट बाद ही शेखावत जी ने भी आश्रम परिसर में प्रवेश किया और वे भी कुछ ही मिनटों में गुरुदेव के पास चले गये। शान्तिकुञ्ज पहुँचने पर उन्हें पता चल गया था कि जोशी जी आए हुए हैं। बाहर किसी मंच या अवसर पर शायद ही कभी साथ दिखाई देने वाले इन नेताओं का यह मिलन अनोखा था। करीब आधा घंटे दोनों गुरुदेव के पास रहे और कुछ अंतर से वापिस चले गए। उन्होंने गुरुदेव से क्या बातचीत की, कुछ नहीं पता। इस बारे में आश्रम से कोई सूचना या विज्ञप्ति भी जारी नहीं हुई। वरिष्ठ कार्यकर्ताओं से किसी ने पूछा तो यही उत्तर मिला कि मंदिर में जिस

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

तरह कोई भी व्यक्ति आ जा सकता है, गुरुदेव के परिसर में उससे भी ज्यादा उन्मुक्त मन से प्रवेश कर सकता है।

इस मुलाकात के तीन सप्ताह बाद राजस्थान सरकार ने दो निर्देश जारी किये। एक निर्देश ब्याह शादियों में अनाप-शनाप खर्च रोकने के लिए था। उसमें एक हद के बाद पुलिस प्रशासन को हस्तक्षेप करने की छूट दी गई थी। दूसरे निर्देश में धार्मिक स्थलों पर किसी को भी आने जाने से रोकना आपराधिक करार दिया गया था। यद्यपि हरिजनों के लिए मंदिर प्रवेश का कानून पहले से मौजूद था। नए निर्देश में उसे प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए प्रशासन को कुछ अधिकार दिए गए थे। ब्याह शादियों के मामले में बारातियों की संख्या बीस से ज्यादा नहीं रखने और दावतों में पचास से ज्यादा लोग नहीं बुलाने की मर्यादा तय थी।

विवाह संबंधों में एक अनर्थ उन दिनों और होता था, जो धीरे-धीरे कम होता गया। वह किसी न किसी रूप में आज भी जारी है। यह अनर्थ खुले आम बाल विवाह के रूप में है। अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ल तीज) पर राजस्थान में निर्द्वन्द्व रूप से बाल विवाह होते हैं। हजारों लाखों की संख्या में होने वाले इन आयोजनों को कोई सख्त कदम उठाकर रोकना मुश्किल ही था। जिन्हें वहाँ के बारे में पता है, वे जानते हैं कि गर्भस्थ शिशुओं के ब्याह शादी भी इस अवसर पर तय हो जाते हैं।

दो परिवारों की महिलायें गर्भवती हों तो उनके प्रमुख निश्चय कर लेते हैं कि यदि एक घर में कन्या का जन्म हुआ और दूसरे में पुत्र का तो दोनों का विवाह हुआ मान लिया जाए। इस तरह के करारों पर रोक लगाना तो मुश्किल था पर दोनों राजनीतिक दलों-कांग्रेस और जनसंघ ने अपने कार्यकर्त्ताओं के लिए यह मर्यादा निश्चित कर दी कि वे अपने परिवार में इस तरह के करार नहीं होने दें। बाल विवाह तो बिल्कुल ही नहीं होने दिए जाएं और न ही इस तरह के आयोजनों में शरीक हों। उन दिनों शारदा कानून के अनुसार विवाह के लिए उपयुक्त उम्र अठारह (वर) और चौदह (कन्या) वर्ष नियत थी।

जिन परिजनों को इन दोनों नेताओं के शान्तिकुञ्ज आने की बात पता थी वे राजस्थान सरकार के निर्देशों को उस मुलाकात के संदर्भ में ही देख रहे थे। उन्हें लग रहा था कि इस निर्णय में गुरुदेव की प्रेरणा का ही असर रहा होगा। इस मुलाकात के कुछ ही दिनों बाद एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई। जनवरी 1977 में केन्द्र सरकार ने लोकसभा भंग करने और जल्दी ही आम चुनाव कराने का फैसला किया। इस बारे में घोषणा भी कर दी। कुछ महीने पहले जिस तरह लोकसभा का कार्यकाल एक वर्ष के लिए और बढ़ाया गया था, उसके अनुसार तो कम से कम साल भर तक चुनाव होने ही नहीं थे। यह अवधि और आगे भी बढ़ सकती थी।

अचानक आम चुनाव की घोषणा ने परिजनों को संदेश दिया कि इस निर्णय में सूक्ष्म जगत् में चल रहे मंथन की भूमिका भी है। बाद में राजस्थान के मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी ने जयपुर के कुछ पार्टी कार्यकर्त्ताओं को गुरुदेव के हवाले से कहा भी था कि लोकसभा की अवधि भले ही बढ़ा दी गई हो लेकिन आप लोगों को चुनाव समर के लिए तैयार रहना चाहिए। भारत में लोकतांत्रिक प्रक्रिया को ज्यादा समय तक स्थगित नहीं रखा जा सकता था। उसी वर्ष यानि मार्च 1977 में हुए आम चुनावों में कांग्रेस के हार जाने पर पार्टी की कार्यकारिणी समिति में भी उन्होंने यह बात 'हरिद्वार के एक संत' का हवाला देते हए कही थी। उनका मानना था कि पिछले सवा दो साल में हम लोगों ने जो ज्यादतियाँ की हैं उसी का परिणाम पराजय के रूप में देखने को मिला है।

1977 के चुनाव के पहले ही नहीं, आपातकाल के दिनों में भी गुरुदेव के पास विभिन्न राजनीतिक दलों के शीर्षस्थ नेताओं का आना जाना बढ़ गया था। आपातकाल के दिनों में तो कोई सोच ही नहीं सकता था कि ये नेता गायत्री परिवार के परिजनों में अपना जनाधार बनाने की मंशा से आते होंगे। उस समय सत्तारूढ़ दल के नेताओं को अपने प्रभुत्व पर कहीं से कोई आँच आती दिखाई भी नहीं देती थी। वे इस विश्वास से लबालब भरे थे कि जीवन भर इसी तरह सत्ता सुख भोगते रहेंगे। दूसरी तरफ विपक्षी दलों को लग रहा था कि अंधेरा शायद इसी तरह छाया रहेगा।

राजधर्म निभाइए

जनवरी 1977 में आम चुनाव की घोषणा के बाद तो शान्तिकुञ्ज आने वाले राजनेताओं का आना-जाना अचानक बढ़

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

गया। यह सिलसिला महीने भर तो बहुत तेजी से चला। उस समय के उपलब्ध विवरणों के अनुसार केन्द्र और राज्यों की राजनीति में सक्रिय 50 से ज्यादा शीर्षस्थ नेता गुरुदेव के पास आए। ज्यादातर इस आशा अपेक्षा से आए थे कि उनके दल को या उन्हें गुरुदेव का समर्थन मिलेगा। इसके लिए अनुरोध करेंगे। उनका समर्थन मिल गया तो चुनाव में गायत्री परिवार के सदस्यों की एक बड़ी संख्या कार्यकर्त्ता के रूप में उपलब्ध हो जायेगी। इस उम्मीद से आए नेताओं को निराश ही होना पड़ा। गुरुदेव ने उन्हें समय तो दिया पर अपने परिजनों के लिए कोई संदेश, निर्देश देने के बजाय उन नेताओं को राजधर्म निभाने के लिए ही चुनाव में उतरने की सलाह दी। यह परामर्श आगन्तुक अतिथियों की मनःस्थिति और पृष्ठभूमि के अनुसार व्यावहारिक दृष्टि से थोड़ा अदल-बदल जाता था लेकिन जोर 'राजधर्म' के निर्वाह पर ही होता था। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के एक प्रसिद्ध संन्यासी ने चुनाव लड़ने की इच्छा व्यक्त की। वे महात्मा होते हुए भी राजनीति में दखल रखते थे और इसी हिस्सेदारी के चलते आपातकाल के दौरान करीब एक वर्ष तक कारावास में भी रह आए थे। गुरुदेव ने उनसे कहा कि आप अपने अंतःकरण की प्रेरणा के अनुसार चलें। सिर्फ इतना ही ध्यान रखें कि राजनीति आपका वास्तविक कार्यक्षेत्र नहीं है। उस क्षेत्र में आप आपद्धर्म निभाने के लिए जा रहे हैं। उद्देश्य पूरा होते ही लौट आएँगे।

(क्रमशः)

• • •

अध्यात्म क्षेत्र में वरिष्ठता योग्यता के आधार पर नहीं, आत्मिक सद्‌गुणों की अग्नि परीक्षा में जाँची जाती है। इस गुण श्रृंखला में निरहंकारिता को, विनयशीलता को अति महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सरकारी क्षेत्रों में योग्यता के आधार पर पदोन्नति होती और नौकरी बढ़ती है। वही मापदण्ड यदि अध्यात्म क्षेत्र में भी अपनाया गया तो फिर भावनाओं का कहीं भी कोई महत्त्व न रहेगा। महत्त्वाकांक्षी लोग ही इस क्षेत्र पर भी अपना आधिपत्य जमाने के लिए योग्यता की दुहाई देने लगेंगे, तब सदाशयता की कोई पूछ ही न रहेगी।

जैसे संन्यास लेते समय अपने अब तक के वंश, यश, पद, गौरव, इतिहास का विस्मरण करना होता है। गुरु, आश्रम एवं संप्रदाय का एक विनम्र सदस्य बनकर रहना पड़ता है। सेवाधर्म भी एक प्रकार से हल्की संन्यास परम्परा है। उसमें भूतकाल में अर्जित योग्यताओं, वरिष्ठताओं को प्रायः पूरी तरह भुला कर मिशन की गरिमा के साथ जुड़े हुए एक स्वयंसेवी के हाथों में जितनी प्रतिष्ठा लगती है उसी में संतोष करना होता है। अधिक वरिष्ठ व्यक्ति अधिक विनम्र होते हैं। फलों से डालियाँ लद जाने पर आम का वृक्ष धरती की ओर झुकने लगता है। अकड़ते तो पतझड़ के डंठल ही हैं।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव

मानव की स्वार्थ और अहंकार की शोषणात्मक प्रवृत्ति के कारण प्रकृति को लगातार नुकसान पहुँचाया जा रहा है। इससे प्रकृति क्षुब्ध हो उठी है। 'नेचर कम्युनिकेशंस' में हाल में ही प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार आगामी चार वर्ष असंगत रूप से काफी गर्म रहेंगे। ज्यों-ज्यों प्राकृतिक घटक मानवनिर्मित जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का प्रतिवर्धन करते हैं; त्यों-त्यों प्राकृतिक प्रभाव ग्लोबल वार्मिंग के प्रवाहों को दबा देंगे। पिछले वर्षों की लम्बी भयावह गर्मी को देखते हुए सुझाया गया है कि कम से कम अगले चार वर्षों के लिए हमें पर्याप्त तैयारी कर लेनी चाहिए। कहा गया है कि आने वाले वर्ष इस वर्ष की अपेक्षा में और भी गर्म होंगे। शोधों से यह भी पता चला है कि पृथ्वी के ऊपर की वायु की अपेक्षा समुद्र और भी जल्दी तथा ज्यादा गर्म होंगे जिसके कारण हरीकेन, बवंडर और प्रचंड तूफान इत्यादि के आने की संभावना बहुत अधिक बढ़ गई है।

ब्रिटेन के साउथम्पटन विश्वविद्यालय, फ्रांस के नेशनल सेंटर फॉर साइंटिफिक रिसर्च और हॉलैंड के रॉयल नीदरलैंड्स मीट्रियोलॉजिकल इंस्टीट्यूट द्वारा जो प्रणाली विकसित की गई है वह पारंपरिक मौसम विज्ञान के अब तक के तरीकों से बिलकुल अलग है। यह नई विधि दस जलवायु मॉडल से सूचना प्राप्त कर यह पता लगाने की कोशिश करती है कि इनमें से किसने पिछले तापमान परिवर्तनों का सही या लगभग सही आंकलन किया था। उसके आधार पर यह बाद में सार्वभौम मौसम केसंभावित उद्भव, क्रमविकास का अध्ययन कर उन प्रभावों की खोज करता है जो मानवनिर्मित नहीं हैं।

साउथेम्पटन विश्वविद्यालय में सामुद्रिक भौतिकी के एक प्रोफेसर के अनुसार इन शोधों में केवल प्राकृतिक कारणों से होने वाली वृद्धि का ही आंकलन किया गया है। उनकी राय में लम्बी अवधि की इस चेतावनी के बाद मौसम में प्राकृतिक रूप से होने वाली विविधता से संभावना इसी बात की है कि आगामी वर्षों में गर्मी इस वर्ष की अपेक्षा दोगुनी से भी अधिक होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि जब प्राकृतिक शक्तियाँ मानवनिर्मित जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को और भी ज्यादा प्रभावित करती हैं तो हम अहितकर स्थिति की ओर बढ़ते हैं।

विशेषज्ञों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के मापन की यह नई तकनीक इस सदी के शुरू में पारंपरिक तरीकों से ग्लोबल वार्मिंग के मापन में अधिक सही रही है। जिन विशेषज्ञों का इस नई शोध से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है- उन्होंने इस शोध का स्वागत करते हुए कुछ सावधानी बरतने को कहा है। औसत ग्लोबल तापमान क्षेत्रीय स्थितियों में वर्ष प्रति वर्ष होने वाले परिवर्तनों जैसे गर्म हवा और सूखे से सीधे सम्बन्धित नहीं कहे जा सकते हैं और इसे भौतिकी के समेकित नियमों का विकल्प भी नहीं माना जाना चाहिए। जो कुछ भी हो, इस बात में कोई दो राय नहीं कि जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव भावी पीढ़ी पर पड़ने ही वाला है।

संभवतः इसी खतरे को भाँप कर अभी एक वर्ष पहले तक गुमनामी में रही स्वीडन की एक छात्रा ग्रेटा थुनबर्ग ने पिछले वर्ष अगस्त में स्वीडन के संसद भवन के बाहर पहली बार जलवायु परिवर्तन के सम्बन्ध में सरकार की नाकामी के विरुद्ध प्रदर्शन किया। फिर पोलेंड में राष्ट्र संघ द्वारा जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी जो कॉफ्रेंस हुई थी उसमें उसने जो भाषण दिया था उससे उसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली।

उसके बाद दावोस में हुई विश्व के अरबपतियों और अर्थशास्त्रियों की शिखर वार्ता में जो भाषण दिया उससे भी लोग काफी प्रभावित हुए। उसी का यह परिणाम हुआ कि अब दुनिया भर में स्कूली बच्चे जलवायु परिवर्तन से परिचित हैं और इसी मुद्दे पर प्रत्येक शुक्रवार को स्कूलों से बाहर आकर प्रदर्शन कर रहे हैं। 16 वर्ष की इस बच्ची ने जो कुछ किया वह बहुत-कुछ वही है जो कुछ वर्ष पहले पाकिस्तान में मलाला ने किया था और जिसके कारण उसे नोबेल पुरस्कार मिला था। अब कुछ लोगों ने ग्रेटा थुनबर्ग का नाम भी नोबेल पुरस्कार के लिए प्रस्तावित किया है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

विगत दिनों ब्रिटेन में तीस हजार से अधिक बच्चे इस राष्ट्रव्यापी हड़ताल में शामिल हुए। कुछ स्कूली यूनिफार्म में थे, कुछ ने अपनी देह पर रंग पोत कर नारे लिख रखे थे, कुछ हाथों में प्लेकार्ड उठाए हुए थे जिन पर जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी नारे लिखे हुए थे। ऐसे हजारों बच्चे लन्दन में पार्लियामेंट स्क्वायर में जलवायु परिवर्तन के सम्बन्ध में सरकार की नाकामी के विरुद्ध इस आशा में एकत्र हुए थे कि अब उनकी आवाज सुनी जाएगी और उनके भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए सरकार कुछ करेगी; क्योंकि भविष्य सही अर्थ में उनका यानि स्कूली बच्चों का ही है।

अब तक दुनिया भर में 270 से अधिक शहरों में स्कूली बच्चे इस आन्दोलन से जुड़ चुके हैं और जुड़ रहे हैं तथा अपने-अपने स्तर से प्रति सप्ताह प्रदर्शन करते हैं। भारत, नेपाल, यूगांडा और फिलिपीन्स जैसे देश भी इससे अछूते नहीं रहे जो जलवायु परिवर्तन से सीधे तौर पर प्रभावित हैं। बच्चे समझ गए हैं कि वर्तमान भले ही हमारा है और जब तक जलवायु परिवर्तन से पूरी दुनिया प्रभावित होगी तब तक शायद हम न रहें, पर बच्चे तो रहेंगे ही- भविष्य उनका है।

अतः उस 'भविष्य' को बचाने के लिए, उसे सुरक्षित रखने के लिए अभी से हमें कुछ करना चाहिए। अब समय शब्दों का नहीं रहा, अब कुछ करने की और अभी ही करने की आवश्यकता है। अब जरूरत है कि समाज के सभी वर्गों के लोग, भले ही वे किसी भी विचारधारा के हों, किसी भी पार्टी के हों, सभी प्रकार के भेद-भाव भुलाकर इस प्रश्न पर एकमत हों जाएँ, क्योंकि इससे कोई एक वर्ग नहीं, केवल अमीर या गरीब नहीं, किसी एक धर्म, शहर या देश के ही नहीं वरन् सभी जगह के, सभी धर्मों के सभी देशों के लोगों का संबंध है और इससे सभी लोग समान रूप से प्रभावित होंगे।

जलवायु परिवर्तन ने आज पूरी दुनिया को अप्रत्याशित रूप से 'एक' हो जाने के लिए बाध्य किया है। इस सम्बन्ध में जो शोध किये गए हैं उनसे पता चलता है कि अभी तक जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को पूरी तरह समझा नहीं जा सका है; क्योंकि पर्यावरण में कार्बन के मुख्य स्रोत के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों ने कोई अध्ययन नहीं किया है। कुछ शोधों से यह अवश्य पता चला है कि जमीन से निकल रहे कार्बन के कारण ग्लोबल वार्मिंग में तेजी आ रही है और इस कारण जलवायु परिवर्तन की गति भी तेजी से बढ़ रही है। पर्यावरणविद् डेविड एटनबरो का मानना है कि जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए यदि हमने अभी से कुछ नहीं किया तो अधिकांश प्राकृतिक परिदृश्य पूरी तरह से नष्ट हो जाएँगे और संस्कृतियों का नामोनिशान तक शेष नहीं रहेगा। बहुत से लोगों, प्रदेशों और देशों के लोगों के लिए यह जन्म-मृत्यु का प्रश्न है। कार्बन उत्सर्जन को रोकने या कम करने से प्रदूषण से होने वाली मौतों से तो निजात मिलेगी ही, साथ ही करोड़ों लोगों को काम भी मिलेगा और अरबों डॉलर की बचत होगी।

यूरोपीय संघ द्वारा तैयार किये गए डाटा के अनुसार केवल यूरोप में ही पिछले वर्ष 450 जगह तीन लाख वर्ग मीटर क्षेत्र में आग लग चुकी है जो कि पिछले एक दशक में लगी आगों के मुकाबले 40 प्रतिशत अधिक है। केवल स्वीडन के जंगलों में ही 65 जगह आग लग चुकी है। साइबेरिया के जंगलों में 38,000 वर्ग मीटर क्षेत्र में आग लगी है तथा पुर्तगाल में लगी आग से 100 से अधिक लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

पिछले एक वर्ष में कनाडा से लेकर पुर्तगाल और जापान तक के जंगलों में लगी आग का मुख्य कारण जलवायु परिवर्तन माना जा रहा है। सूखा और गर्मी ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे आग लगने का खतरा भी बढ़ता जाता है। पिछले वर्ष केवल भारत ही नहीं दुनिया भर के देश भीषण गरमी से त्रस्त रहे हैं। इसके साथ ही ताप-तरंग और अंधड़ आदि ने भी आग को बढ़ाने में सहायता की है। यद्यपि वातावरण में कार्बन के बढ़ते जाने का कोई निश्चित कारण नहीं बतलाया जा सकता तब भी जलवायु परिवर्तन और इस प्रकार की विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं के मध्य चोली-दामन का सम्बन्ध कहा जाता है।

तापमान कब, कहाँ, कितना घटेगा या बढ़ेगा और मौसम कितना बदलेगा इसकी अनिश्चितता के कारण जलवायु परिवर्तन का आर्थिक समाघात एक ऐसा विषय है जिस पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। दो वर्ष पहले पेरिस में 170 देशों द्वारा जो जलवायु समझौता किया गया था कि वे दो सेंटीग्रेड तक ग्लोबल वार्मिंग कम करेंगे, उस पर बहुत से देशों ने अभी तक कुछ भी नहीं किया। प्रकृति के प्रति इस घोर निष्क्रियता को दूर करना चाहिए ताकि समय रहते इस आसन्न संकट को दूर किया जा सके। •

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

उत्तराखण्ड की भाषाओं का अध्ययन

संस्कृत को विश्व की प्राचीनतम भाषा माना जाता है। जिस समय भारतभूमि पर प्राचीन आर्य संस्कृति संस्कृत भाषा के द्वारा ब्रह्मज्ञान का प्रचार-प्रसार कर रही थी, उस समय विश्व की अन्य मानव जातियाँ सांकेतिक भाषा से ही काम चला रही थीं। वर्तमान में संस्कृत को भारतीय संस्कृति की दिव्य धरोहर मानते हुये इसे देववाणी से अभिभूत किया जाता है। भारतवर्ष के इतिहास में यह भाषा लगभग चार हजार वर्षों से प्रचलित है और सभी भाषाओं की जननी के रूप में पहचानी जाती है। इसे देववाणी, अमरवाणी, गीर्वाणवाणी आदि नामों से भी जाना जाता है।

भाषा विज्ञान से सम्बद्ध अनेक अध्ययन यह दर्शाते हैं कि विश्व एवं भारत की अनेक अन्य भाषाओं-बोलियों ने संस्कृत से पर्याप्त सामग्री प्राप्त की है। भारत में प्रायः सभी प्रचलित भाषाओं पर संस्कृत का वर्चस्व देखा जा सकता है परन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत की उत्कृष्टता और भारतीय भूभाग पर विभिन्न प्रान्तों-क्षेत्रों में उपयोग की जाने वाली स्थानीय भाषाओं एवं बोलियों का अन्तर्सम्बन्ध जानने के लिए शोध-अनुसंधान की आवश्यकता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में सन् 2019 में संस्कृत भाषा के क्षेत्रीय भाषाओं पर प्रभाव एवं महत्त्व को दर्शाने वाला एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन कार्य पूरा किया गया है। भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित यह शोध अध्ययन संस्कृत भाषा के प्राचीन, पौराणिक, ऐतिहासिक महत्त्व के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टि से इस देवभाषा की व्यापकता, समृद्धता और उच्चता को प्रकट करने वाला एक सार्थक प्रयास है। इस शोध अध्ययन को शोधार्थी प्रियंका जलाल द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ. इन्द्रेश पथिक के निर्देशन में पूरा किया गया है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संस्कृत एवं वैदिक अध्ययन विभाग (मुख्य भारतीय भाषा संकाय) के अन्तर्गत किये गये इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का विषय है- संस्कृत भाषा के परिप्रेक्ष्य में उत्तराखण्ड की भाषाओं (बोलियों) का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन (कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषा के सन्दर्भ में)। सैद्धान्तिक एवं विवेचनात्मक विषयों पर आधारित इस अध्ययन को शोधार्थी द्वारा कुल छः अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय है-संस्कृत भाषा एवं भाषा-विज्ञान।

इस अध्याय के अन्तर्गत अध्ययन की जानकारी एवं उद्देश्य के साथ-साथ संस्कृत भाषा के उद्भव-विकास तथा भाषा-विज्ञान का अर्थ एवं उसके विभिन्न प्रकारों की विवेचना की गई है। जिस माध्यम से मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है, उसे भाषा की संज्ञा प्रदान की जाती है। विश्व की प्राचीनतम भाषा संस्कृत है। संस्कृत का मूल अर्थ है-संस्कार की गई भाषा। इसी से सभी भाषाओं का जन्म माना जाता है।

संस्कृत भाषा की यह विशिष्टता है कि अत्यन्त प्राचीन होने के बावजूद तथा समय-समय पर होने वाले भाषागत परिवर्तनों से गुजरने के बाद भी महर्षि पाणिनि के नियमों के फलस्वरूप आज भी संस्कृत साहित्य में संस्कृत भाषा उत्कृष्ट, सुगठित तथा सुदृढ़ है। भाषा-विज्ञान का अर्थ है- भाषा का विशिष्ट ज्ञान। इस विज्ञान के अन्तर्गत किसी भाषा का उद्भव, विकास, विस्तार, स्वरूप आदि का वैज्ञानिक अध्ययन एवं व्याख्या की जाती है। ध्वनि विज्ञान के चार प्रमुख अंग हैं-1. ध्वनि विज्ञान, 2. पद-विज्ञान, 3. वाक्य-विज्ञान और 4. अर्थ विज्ञान।

द्वितीय अध्याय है-उत्तराखण्ड का इतिहास।

इसके अन्तर्गत उत्तराखण्ड का परिचय एवं प्राचीनता, उत्तराखण्ड के प्राचीन निवासी तथा उत्तराखण्ड की समाज एवं संस्कृति का विवेचन किया गया है। उत्तराखण्ड भारत भूमि के शीर्ष भाग को कहा जाता है। वेद, पुराण आदि शास्त्रों में इस भू-भाग का विशेष उल्लेख है। सन् 2000 में भारत के सत्ताइसवें राज्य के रूप में उत्तराखण्ड राज्य गठित हुआ है। उत्तराखण्ड की प्राचीनता और

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

इसमें पुष्पित-पल्लवित सभ्यताओं-संस्कृतियों के प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक प्राचुर साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

यहाँ के प्राचीन निवासियों में कोल, किरात, खश, भोटान्तिक, बोक्सा, थारू, राजी, जौनसारी, जाड़ आदि का उल्लेख मिलता है। उत्तराखण्ड के प्राचीन राजवंशों का उल्लेख भी भारतीय शास्त्रों में मिलता है। इन राजवंशों में कुणिन्द राजवंश, पौरव राजवंश, कत्यूरी राजवंश, चंद वंश, पंवार वंश प्रमुख हैं। उत्तराखण्ड की समाज व्यवस्था और संस्कृति में प्राचीन वैदिक संस्कृति का पर्याप्त स्थान रहा है। आज भी यह भूमि भारतीय धर्म, संस्कृति और अध्यात्म का प्रमुख केन्द्र है।

तृतीय अध्याय है-उत्तराखण्ड में स्थित कुमाऊँ एवं गढ़वाल क्षेत्र की महत्ता।

इस अध्याय के अन्तर्गत कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषा के परिचय, उद्‌भव एवं विकास की विस्तृत विवेचना की गई है। कुमाऊँनी भाषा उत्तराखण्ड के नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, ऊधम सिंह नगर, चंपावत, बागेश्वर जिलों में बोली जाती है। विद्वानजन हिन्दी की भांति शौरसेनी से ही कुमाऊँनी भाषा का विकास मानते हैं। कुमाऊँनी भाषा की आधारभूत सामग्री संस्कृतमूलक है तथा प्रमुख शब्द-समूह या तो सीधे संस्कृत स्रोत से आये हैं अथवा पाली, प्राकृत और अपभ्रंश एवं हिन्दी के माध्यम से आये हैं।

उत्तराखण्ड का दूसरा मंडल गढ़वाल है, जहाँ गढ़वाली भाषा बोली जाती है। इस क्षेत्र में प्रमुखतया सात जिले-देहरादून, पौड़ी गढ़वाल, हरिद्वार, टिहरी गढ़वाल, उत्तरकाशी, चमोली और रुद्रप्रयाग हैं। यहाँ प्रचलित गढ़वाली भाषा का मूल स्रोत संस्कृत है, परन्तु साथ ही अनेक भाषाओं का प्रभाव भी इस भाषा पर पड़ा है। गढ़वाली भाषा का उद्‌भव संस्कृत से अवश्य हुआ लेकिन कालान्तर में प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश रूप में परिवर्तित होते-होते शौरसेनी अपभ्रंश तक प्रभाव दिखाई देता है। विद्वानों के अनुसार गढ़वाली भाषा में कुछ विशेष शब्दों और क्रियापदों को छोड़कर विकृत संस्कृत की शैली और शब्दावली अधिक है।

चतुर्थ अध्याय है-उत्तराखण्ड की भाषाओं का ध्वनि, शब्द एवं अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन। इस अध्याय के अन्तर्गत कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषा का ध्वनि विज्ञान, शब्द विज्ञान और अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से विस्तृत अध्ययन एवं विवेचन किया गया है। किसी भी भाषा के लिए ध्वनि, शब्द व अर्थ तीनों आवश्यक हैं। ध्वनि भाषा की मूलभूत इकाई है। ध्वनि में परिवर्तन से ही किसी एक भाषा में कालान्तर में अनेक अपभ्रंश शब्दों का निर्माण हो जाता है। संस्कृत और हिन्दी की भाँति ही कुमाऊँनी और गढ़वाली भाषाओं में भी ध्वनि परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

शब्द विज्ञान की दृष्टि से कुमाऊँनी और गढ़वाली भाषा में अनेकों विशेष बातें जुड़ीं हैं। दोनों देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं और संस्कृत एवं हिन्दी की भाँति इन भाषाओं का शब्द-विज्ञान भी अत्यन्त विस्तृत है। अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से भी उत्तराखण्ड की दोनों भाषाओं में अर्थ से सम्बन्धित सभी रूप देखने को मिलते हैं। कुमाऊँनी भाषा में दीर्घ व ह्रस्व शब्दों का प्रयोग किया जाता

द्वेष वृत्तियों का परित्याग करके यदि मनुष्य अपने अन्दर सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने में लग जाए तो उसकी दुनिया आज की अपेक्षा कल दूसरी ही हो सकती है। दृष्टिकोण के बदलने से दृश्य बदलते हैं। नाव के मुड़ने से किनारे पलट जाते हैं। हमें अपना सुधार निरन्तर करते रहना चाहिए। सुधार के लिए हर दिन शुभ है। उसके लिए कोई आयु अधिक नहीं। बूढ़े और मौत के मुँह में खड़े हुए व्यक्ति भी यदि अपने सुधार आरम्भ करें तो उन्हें भी आशाजनक सफलता प्राप्त हो सकती है। जिनके सामने अभी लम्बा जीवन पड़ा है वे तो इस आत्मसुधार की प्रक्रिया को धीरे-धीरे चलाते रहें तो भी अपने जीवनक्रम का कायाकल्प कर सकते हैं।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

है जिनके कारण अर्थ परिवर्तन हो जाता है। गढ़वाली भाषा में भी अनेक समानार्थी शब्द एवं अनेकार्थी व विपरीतार्थी शब्दों का प्रचलन है जिनसे अर्थों में परिवर्तन दिखाई देता है।

पंचम अध्याय है-कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषा का संस्कृत से सम्बन्ध।

इसके अन्तर्गत कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषा केसंस्कृत भाषा से साम्य तथा वैषम्य की विस्तृत विवेचना की गई है। शोधार्थी ने तथ्यात्मक रूप से संस्कृत व हिन्दी के शब्दों को प्रस्तुत करते हुये उनसे साम्य रखने वाले गढ़वाली एवं कुमाऊँनी भाषा के प्रचलित शब्दों को उद्धरण रूप में रखकर संस्कृत भाषा से इन दोनों भाषाओं की साम्यता को उजागर किया है। सायता के साथ ही इन दोनों भाषाओं के कुछ ऐसे भी लोकप्रचलित शब्द हैं जो संस्कृत अथवा हिन्दी शब्दों से साम्यता नहीं रखते। ऐसे वैषम्यतायुक्त शब्दों को भी अध्ययन में प्रस्तुत किया गया है ताकि इन दोनों भाषाओं की क्षेत्रीय विशेषता का भी पता चल सके।

षष्ठम् अध्याय उपसंहार है।

इसके अन्तर्गत कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषा के साहित्य एवं वर्तमान में इन दोनों भाषाओं के विकास की दिशा तथा स्वरूप की विवेचना करते हुये शोध अध्ययन के निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है। उत्तराखण्ड राज्य में कुमाऊँनी और गढ़वाली भाषा के दोनों समुदायों व संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय है। संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं की तरह इन दोनों भाषाओं की साहित्यिक रचनाएँ विस्तृत नहीं हैं, फिर भी कुछ मौलिक रचनाओं और पत्र-पत्रिकाओं का लेखन, प्रकाशन हुआ है, जिनका उल्लेख इस अध्ययन में किया गया है।

शोधार्थी के अनुसार कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषाओं की वर्तमान स्थिति चिन्तनीय है। इन भाषाओं के कोई प्राचीन साहित्य उपलब्ध नहीं हैं। जो पहाड़ी साहित्य उपलब्ध होता है वह भी उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी में ही रचित-वर्णित है। अतः वर्तमान समय में इनके प्रचार-प्रसार हेतु उचित प्रयासों की आवश्यकता है। शोध में इन दोनों भाषाओं के उत्थान हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही शोधार्थी ने इस तथ्य पर भी बल दिया है कि उत्तराखण्ड की दोनों भाषाओं का स्रोत संस्कृत है। अतः संस्कृत भाषा के विकास-विस्तार के लिए संस्कृतनिःसृत ऐसी भाषाओं का संरक्षण एवं उत्थान आवश्यक है।

•••

घटना उन दिनों की है जब अफ्रीका में बीमारी फैली हुई थी। उस कठिन क्षेत्र में चिकित्सा करने के लिए डॉक्टरों की माँग छपी। जर्मनी के अध्यापक श्वाइत्जर ने अपनी नौकरी छोड़ दी और डॉक्टरी सीखने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि वे अफ्रीका में पिछड़े दुःखियों के लिए जीवन अर्पण करेंगे। डॉक्टरी में पास होते ही वे अफ्रीका चले गए और अनेक रोगों से ग्रसित उस क्षेत्र के पिछड़े लोगों की सेवा, चिकित्सा द्वारा करने लगे। कुष्ठ रोगियों के लिए उन्होंने पृथक चिकित्सालय बनाया। नित्य पन्द्रह घण्टे काम करते। उस समूचे क्षेत्र में उन्हें जीवित दयालु ईसामसीह माना जाता था।

उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला। वह राशि उन्होंने कुष्ठ चिकित्सालय के लिए दान कर दी। निरन्तर रोगियों के सम्पर्क में आने से उन्हें भी छूत लगी और समय से पहले ही उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी पत्नी उनके काम में पूरी तरह उनका हाथ बँटाती थीं। बाद में वे भी उस कार्य में लगी रहीं।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

परस्पर सहयोग से चलता जीव-जंतुओं का रोचक संसार

यह सृष्टि- स्रष्टा की अद्भुत रचना है, जिसमें उसने सभी प्राणियों एवं जीवधारियों को विशिष्ट क्षमताओं व समझ के साथ भेजा है। जंगलों में वास करने वाला जीव-जंतुओं का संसार इसका अपवाद नहीं। यहाँ विभिन्न प्रकृति के जीवों को मिल-जुल कर अपने जीवन को सरल बनाते देखा जा सकता है, संभावित खतरों से मिलजुल कर वे एक दूसरे की रक्षा करते हैं तथा बुद्धिमान कहलाने वाले इंसान को भी एक महत्तवपूर्ण संदेश देते रहते हैं।

मिस्र के नन्हे से टिटहरी पक्षी में सिंह सा साहस होता है। इस नन्हे से पक्षी का अधिकांश समय मगरमच्छ के खुले जबड़े में भोजन के जुगाड़ में बीतता है। यह टिटहरी मगरमच्छ के दाँतों के बीच फँसे माँस के टुकड़ों को निकालती है, जबकि खतरनाक जानवर आराम से बैठा हुआ धैर्य के साथ आस-पास तैर रहे दिन के आहार को नजरंदाज करते हुए जबड़ों की सफाई का इंतजार कर रहा होता है। इस दौरान टिटहरी अपना पेट भर रही होती है, जबकि मगरमच्छ के दैनिक डेंटल चैकअप के साथ-साथ दाँतों की सफाई का अभियान चल रहा होता है।

ऑस्ट्रेलिया में पायी जाने वाली मांसाहारी चींटी, कंकड़ चींटियों के नाम से प्रख्यात हैं, जो 650 मीटर तक ऊँचे कंकड़ों की बाँबी बनाती हैं, जिसमें 64,000 तक चींटियाँ रह सकती हैं। यह चींटियों बहुत खूंखार होती हैं व अपने इलाके में किसी का हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं करतीं। दुश्मनों को भगाने के लिये ये बदबूदार गंध फेंकती हैं व अनवरत प्रहार करती हैं। इन चींटियों के बारे में रोचक बात यह है कि ये कुछ इल्लियों से विशेष लगाव रखती हैं।

ये चींटियाँ बड़े झुंडों में इन इल्लियों को घेरकर इनकी शिकारियों से रक्षा करती हैं और पड़ोसी इल्लियों को भी इसी तरह से संरक्षण देती हैं। यहाँ तक कि अपनी बाँबियों तक में उनको स्थान देती हैं। यह सब ये इसलिए करती हैं, क्योंकि ये इल्लियाँ एक मीठा द्रव्य स्रावित करती हैं, जो चींटियों के लिए भोजन का काम करता है, साथ ही अपनी कॉलोनी बनाने में ये इसका उपयोग कंकड़ों को जोड़ने में करती हैं। प्रतिदान में ये चींटियाँ इस अलसाये जीव को एक तरह का सैन्य संरक्षण देती हैं। इस तरह दोनों का कार्य बखूबी चलता रहता है।

अधिकांश पक्षी अपने दम पर जंगल में चारा चरते हैं, लेकिन मवेशी बगुला एक ऐसा पक्षी है, जिसने बड़े मवेशियों के साथ दोस्ती कर इसका इंतजाम कर रखा है। यह जल भैंसों या अन्य बड़े चरने वाले पशुओं के आस-पास बैठा रहता है। जब ये बड़े पशु चलते हैं या चरते हैं, तो जो कीड़े-मकोड़े बाहर निकलते हैं, यह इनका शिकार करता है। इससे भी दो कदम आगे जाकर यह बगुला प्रायः भैंस, घोड़े या गाय की पीठ पर सवारी करता है और उनके शरीर के टिक्स व पिस्सु जैसे परजीवी हानिकारक कीटों की सफाई करता है। ये बगुले परिवेश के प्रति अधिकांश चरने वाले पशुओं से अधिक संवेदनशील होते हैं, अतः खतरों को भाँप लेते हैं। इस तरह ये चर रहे पशुओं को हिंसक पशुओं व शिकारियों से सचेत करते हैं।

शुतरमुर्ग और जेबरा, ये दोनों ही जीव तेज गति वाले माँसाहारी जीवों के शिकार बनते रहते हैं, इसलिए दोनों मिलकर इसका समाधान निकालते हैं। मिलकर दोनों एक दूसरे की कमियों को पूरा करते हैं। मालूम हो कि जेबरे की दृष्टि बहुत पैनी होती है, लेकिन सूँघने की क्षमता बहुत अच्छी नहीं होती। वहीं शुतरमुर्ग की दृष्टि बहुत पैनी नहीं होती, लेकिन यह अद्भुत घ्राणशक्ति रखता है। इस तरह दोनों के मिलकर रहने से खतरे को भांपने की क्षमता बढ़ जाती है, इसलिए दोनों एक साथ विचरण करते हैं। पैनी दृष्टि एवं अद्भुत घ्राणक्षमता की सम्मिलित शक्ति इन्हें शिकारी जानवरों के खतरे से बचाए रखती है। इसी कारण से इन जानवरों को अन्य जंगली जानवरों के साथ भी विचरण करते देखा जा सकता है।

कठफोड़वा एवं पेड़ में रहने वाली चींटी प्राकृतिक रूप में एक-दूसरे के दुश्मन हैं। पक्षी, चींटियों को खा जाते हैं, तो चींटियाँ

पक्षियों के अंडे को, लेकिन हर वसंत ऋतु में कुछ अद्भुत घटित होता है, जब लाल-भूरा कठफोड़वा अंडे देने वाला होता है और वह पेड़ में विचरण करने वाली काली चींटी के घोंसले में अण्डे दे जाता है। ये चींटियाँ भी इनके स्वागत के लिए छेद तक किए रहती हैं।

कठफोड़वा और चींटियाँ एक दूसरे पर तब तक हमला नहीं करते, जब तक अंडे से चूजा तैयार हो रहा होता है। चूजा निकलने के बाद भी कठफोड़वा घोंसले से अंदर बाहर उड़ान भरता रहता है और चूजे को पोषण देता है। लोगों का अनुमान है कि चूजों से बचा हुआ भोजन चींटियों के काम आता है, इससे तृप्त होकर वे इनको नहीं छेड़तीं। हालाँकि इस अस्थायी समझौते का सही कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है।

हनी गाईड शहद का शौकीन पक्षी है, लेकिन शहद के छत्ते तक पहुँचने का इसके पास कोई तरीका नहीं होता। इसका समाधान यह हनी बेजर्ज या बिज्जू नामक जीव के सहयोग से करता है, जो शहद का खासा शौकीन होता है। यह पक्षी हनी बेजर्ज को छत्ते तक ले जाता है, जहाँ यह उसमें सेंध लगाकर भरपेट शहद खाता है, इसके बाद, हनी गाईड पक्षी शेष छत्ते की सफाई करता है। मालूम हो कि हनी बेजर्ज धरती पर विचरण करने वाला सबसे निडर जीव माना जाता है। जंगल का राजा शेर भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ नहीं पाता, किंग कोबरे का विष भी इस पर निष्प्रभावी होता है। कारण इसकी मोटी चमड़ी, खूंखार दाँत, पँजे व निडर स्वभाव हैं, जिससे यह एक अभेद्य कवच धारण किए रहता है व किसी भी स्थिति से निपटने में सक्षम होता है। शहद के दंश इसके लिए कोई मायने नहीं रखते, अतः हनी गाईड पक्षी इसकी विशेषता को जानते हुए इसका सहारा लेता है। हनी गाईड पक्षी को इंसान को भी शहद का छत्ता खोजने में मदद करते देखा जाता है।

इस तरह मनुष्य द्वारा नासमझ समझे जाने वाले ये से जीव-जंतु भी अद्भुत समझ से युक्त होते हैं व अपने जीवन को अधिक सुरक्षित व सरल बनाने के लिए इसका उपयोग करते देखे जा सकते हैं। देखकर यही प्रतीत होता है कि सृष्टि के रचनाकार ने अपनी हर कृति को कुछ विशिष्टता के साथ रचा है व इतनी बुद्धि दी है कि वे अपने जीवन की उचित व्यवस्था कर सकें। •

मार्टिन लूथर के पिता उन्हें वकालत पढ़ाना चाहते थे, पर इससे उन्होंने नम्रतापूर्वक इनकार कर दिया। झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा बतलाना उन्हें मंजूर न था। उन्होंने धर्मोपदेशक बनना चाहा और पिता की अनिच्छा के बाद भी वही पढ़ने लगे। अपनी प्रतिभा के कारण वे उस क्षेत्र में उच्च पद प्राप्त कर सके पर जिस कारण से उन्होंने वकालत पढ़ने से इनकार किया वह बीमारी यहाँ भी मौजूद पाई। पैसा लेकर स्वर्ग के टिकट बाँटने का व्यवसाय यहाँ भी चल रहा था। लूथर की आत्मा ने इसके विरुद्ध भी बगावत खड़ी कर दी। उन्होंने अब तक की जीवनधारा उलट दी। समर्थक के स्थान पर विरोधी हो गए।

पादरीवर्ग ने उन पर मुकदमा चलवाया, धर्मद्रोही ठहरा दिया और देश निकाले की सजा दिलवाई। इतने पर भी उन्होंने अपना कार्य जारी रखा। एक ओर समूचा पादरी समुदाय, दूसरी ओर अकेला मार्टिन, पर सच्चाई उनके साथ थी, फलतः उनका आंदोलन समसूचे यूरोप में फैला और ईसाई समाज में सुधारकों का एक पृथक वर्ग ही खड़ा हो गया। धर्मक्षेत्र में सामयिक सुधार के साहस का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया मार्टिन लूथर ने।

सांप्रदायिकता त्यागें आध्यात्मिकता अपनाऐं

प्रायः अखबार-समाचारों में सांप्रदायिकता से सबन्धित खबरें पढ़ने व सुनने को मिल जाती हैं, लेकिन सामान्य लोग इसका अर्थ ठीक से समझ नहीं पाते। सांप्रदायिकता का अर्थ है- धार्मिक समुदायों में मतभिन्नता। सप्रदाय यानि कोई एक धर्म और उसकी संस्कृति।

हमारे समाज में अनेक धर्मो के लोग रहते हैं, लेकिन जब एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों पर सवाल उठाने लगें, उनके धर्म के विरुद्ध बातें करने लगें, तो इससे समाज में एक असंतुलन, एक असामंजस्य, एक विरोधपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

समाज में जब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनमें यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य धर्म के विरोध में अपना वक्तव्य प्रस्तुत करे, तो यह सांप्रदायिकता कहलाता है। जब एक सम्प्रदाय के हित दूसरे सम्प्रदाय से टकराते हैं, तो भी साम्प्रदायिकता का उदय होता है। यह एक उग्र विचारधारा है, जिसमें प्रायः दूसरे सम्प्रदाय की आलोचना की जाती है, इसमें एक सम्प्रदाय, दूसरे सम्प्रदाय को अपने विकास में बाधक मान लेता है।

सांप्रदायिकता उस राजनीति को भी कहा जाता है, जो धार्मिक समुदायों के बीच विरोध और झगड़े पैदा करती है और इसके कारण अकारण ही कई निर्दोष मारे जाते हैं, जब देश में सांप्रदायिक दंगे फैलते हैं, सांप्रदायिक आक्रामकता अपने पैर पसारती है, तो देश का युवा वर्ग भी बिना सोचे-समझे उसमें शामिल हो जाता है और इससे कईयों का जीवन संकट में पड़ जाता है।

भारत में सांप्रदायिक राजनीति का इतिहास पुराना है और भयावह भी है। इसे सुनकर व जानकर रोंगटे तक खड़े हो जाते हैं। हमारे देश में आक्रामक सांप्रदायिकता के कारण स्वाधीनता के पूर्व भी दंगे हुए थे। 16 अगस्त सन् 1946 में भारत की स्वतंत्रता के पूर्व मुस्लिम लीग द्वारा 'सीधी कार्यवाही' की घोषणा से कोलकाता में भीषण दंगे शुरु हो गए थे। 'सीधी कार्यवाही' मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग को तत्काल स्वीकार करने के लिए चलाया गया अभियान था, जिसमें 4000 लोग मारे गए थे, 10-11 हजार लोग घायल हुए थे। इसके बाद तो जैसे देश में दंगों का दौर ही शुरु हो गया।

हमारे देश में कभी भी, किसी भी कारण से, किसी न किसी रूप में दंगे भड़क उठते हैं और इनके कारण चारों तरफ हिंसा, तोड़फोड़, आगजनी, दुर्व्यवहार व दुर्घटनाऐं फैल जाती हैं। इन सांप्रदायिक दंगों का कारण चाहे जो भी हो, लेकिन इनके परिणाम कभी भी हितकारी व लाभकारी नहीं रहे, इन दंगों ने हमेशा ही जन-धन की हानि की और समाज में भय व अव्यवस्था फैलाया हैं।

सातवीं सदी के पहले भारत में कोई सांप्रदायिक समस्या नहीं थी। यहाँ 'दंगा' शब्द का कोई अस्तित्व ही नहीं था। दरअसल यह एक विदेशी शब्द है जिसका अर्थ सांप्रदायिक आक्रामकता, राष्ट्र व राज्य के विरुद्ध युद्ध है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है, यहाँ सभी धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं और यहाँ उनके धर्मों का समान किया जाता है, उन्हें स्वीकारा जाता है। भारतीय नागरिकों का साथ-साथ रहना, उन्नति करना, राष्ट्रीय समृद्धि में वृद्धि करना व इसमें भागीदार बनना और संविधान के अनुशासन में रहना हम सबकी नियति है, फिर समाज में ये सांप्रदायिक दंगे क्यों पनप उठते हैं?

सांप्रदायिकता से संबंधित एक शब्द और आता है- सांप्रदायिक अलगाववाद अर्थात् कोई धर्म विशेष स्वयं को सबसे अलग-थलग यानि अकेला महसूस करे। इस सांप्रदायिक अलगाववाद का पोषण ब्रिटिश सत्ता ने किया। इसी अलगाववाद का नतीजा देश विभाजन था। डॉ. अंबेडकर ने इस बारे में सही

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

लिखा था कि 'अलगाव वहाँ होता है, जहाँ टुकड़ों को जोड़ा गया हो, पर यहाँ तो जुड़ी हुई चीज को ही तोड़ने की बात है।'

वास्तव में सांप्रदायिकता हमारे समाज में ऐसा जहर घोलती है, जिसके कारण जन-मस्तिष्क मूर्च्छित होकर, बेहोश होकर ऐसा कार्य करने को तत्पर हो जाता है, जो वास्तव में अमानवीय होता है, अहितकर होता है।

देखा जाए तो हर धर्म, हर संस्कृति प्रेमपूर्वक साथ-साथ मिल-जुल कर रहने की प्रेरणा देते हैं, इसलिए यदि साम्प्रदायिकता को इतना महत्त्व देने के स्थान पर आध्यात्मिकता को अपनाया जाए और धर्मानुसार आचरण किया जाए, तो फिर मानव जाति में एक-दूसरे धर्म के प्रति विरोध न होगा। धर्म-सम्प्रदाय मात्र बाहरी काय-कलेवर हैं और अध्यात्म उसकी आत्मा है। जिस तरह मंदिर, मस्जिद या चर्च की बनावट पर ध्यान दिया जाए, लेकिन वहाँ की जाने वाली क्रमशः पूजा-आराधना, नमाज व प्रार्थना को नजरअंदाज किया जाए, कुछ वैसी ही स्थिति आज हमारे धर्म-सम्प्रदाय की है।

धर्म-सम्प्रदाय के नाम पर बहुत कुछ किया जाता है, लेकिन इनके मर्म को नहीं समझा जाता। मूल रूप से हर धर्म-सप्रदाय दूसरों के हित की बात करते हैं, दूसरों की मदद करना, सेवा-सहयोग करना, किसी को पीड़ा न पहुंचाना, मिल-जुलकर रहना आदि। सभी धर्म दिखते अलग-अलग रूपों में हैं, लेकिन सबका मूल तत्व एक ही है, सबको एक ही तत्व 'परम तत्व' तक पहुँचना है। उस तक पहुँचने के मार्ग भले ही अलग-अलग हैं, लेकिन लक्ष्य सबका एक ही है। उस परम तत्व को पुकारने के उच्चारण भी अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग हैं, लेकिन वास्तव में मूल रूप में वह परम तत्व एक ही है।

जब सभी धर्मों का मूल एक है, फिर धर्म के नाम पर, सम्प्रदाय के नाम पर इतनी आक्रामकता क्यों? एक दूसरे धर्म के प्रति मन में इतना बैर क्यों? एक धर्म को दूसरे धर्म से श्रेष्ठ प्रमाणित करने की बात ही क्यों? वास्तव में अध्यात्मवाद ही वह मार्ग है, जिसमें सम्प्रदायवाद समाप्त हो सकता है और व्यक्ति को भ्रम व उन्माद के नशे से बचाया जा सकता है। •••

तब बीमारियाँ एक पहाड़ पर रहा करती थीं। पर्वत उन्हें अपनी पुत्री की तरह पालता-पोसता। बीमारियाँ उसका अनुग्रह मानतीं और कोई भी उपकार करने की इच्छुक बनी रहतीं, पर पहाड़ को उनकी सेवाओं की आवश्यकता भी तो नहीं थी।

कुछ दिन बीते, एक किसान को कृषियोग्य भूमि की जरूरत पड़ी। और कहीं जमीन तो थी नहीं, यह देखकर परिश्रमी किसान पहाड़ काटने और उसे चौरस बनाने में जुट गया। देखते-देखते किसान ने बहुत सी भूमि कृषियोग्य कर ली। यह देखकर अन्य किसान भी जुट पड़े। किसानों की संख्या देखते-देखते सैकड़ों की संख्या में जा पहुँची। यह देखकर पहाड़ घबड़ाया और अपने बचाव का उपाय सोचने लगा। उसे बीमारियों की याद आयी। उसने उनसे पूछा- क्या आप लोग हमारे उपकार का प्रतिफल देंगी। बीमारियों ने कहा- आप सहर्ष आदेश दें, हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं?

पहाड़ ने किसानों की ओर इशारा करते हुए कहा- तुम किसानों पर झपट पड़ो और उनका सत्यानाश कर डालो। बीमारियाँ पूरे जोर के साथ किसानों पर हमला कर बैठीं पर किसान तो अपनी धुन में लगे हुए थे। वे जितनी तेजी से फावड़े चलाते, उतना ही पसीना निकलता और सारी बीमारियाँ धुल कर नीचे गिर जातीं। पहाड़ ने जब देखा कि बीमारियाँ जब उसकी रक्षा न कर सकीं तो उसने उन्हें अपने यहाँ से निकाल दिया। यही सत्य है कि बीमारियाँ परिश्रम से विहीन लोगों को परेशान कर पाती हैं, परिश्रमशीलों को नहीं।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

युग गीता - 243

दैवीय प्रकृति के गुणों का वर्णन

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग नामक सोलहवें अध्याय की पहली किश्त)

[विगत किश्त में श्रीमद्भगवद्गीता के पंद्रहवें अध्याय के बीसवें श्लोक की व्याख्या करने के साथ ही पुरुषोत्तम योग नामक उस अध्याय की समाप्ति हुई। उस अध्याय का प्रारंभ श्रीभगवान् के इस वचन के साथ हुआ था कि ऊपर की ओर जड़ों वाले तथा नीचे की ओर शाखाओं वाले इस संसाररूपी अश्वत्थ वृक्ष को जो भलीभाँति जानता है, वही वेदों को समग्र रूप से जान पाता है। इस संसाररूपी वृक्ष की त्रिगुणों के द्वारा बढ़ी हुई तथा विषयरूपी कोपलों वाली शाखाएँ सृष्टिपर्यन्त फैली हुई हैं, इस संसाररूपी वृक्ष का न आदि है और न ही अन्त और इस दृढ़ मूल वाले वृक्ष को दृढ़ असंगतारूपी शस्त्र से काटकर ही परमात्मा की खोज करनी चाहिए। उन परमात्मा को जो एक बार प्राप्त हो जाता है, वह पुनः संसार में लौट कर नहीं आता। ऐसा कहने के बाद श्रीभगवान्, अर्जुन को बताते हैं कि उन परमात्मा को पाने का अधिकार किन साधक भक्तों को मिलता है? इस जिज्ञासा के उत्तर में वे कहते हैं कि जो भक्त मान और मोह से रहित है, आसक्तिरूपी दोष पर विजय प्राप्त कर चुके हैं, नित्य-निरन्तर परमात्मा के चिंतन में निमग्न हैं, सभी कामनाओं से मुक्त हैं, सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से मुक्त हैं, वे उस परमपद को प्राप्त करने के अधिकारी बन पाते हैं।

उस परमपद का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि वह परमपद सूर्य, चन्द्र, अग्नि से प्रकाशित नहीं है वरन् स्वप्रकाशित है और उसको प्राप्त होने के बाद जीवात्मा पुनः इस संसार को नहीं लौटती। ऐसा कहने के साथ वे यह भी कहते हैं कि वैसे तो इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा मेरा ही अंश है परंतु वह प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इंद्रियों को आकर्षित कर लेता है, उनके द्वारा विषयों का सेवन करने लगता है और इसीलिए अपने सत्य स्वरूप को भुला बैठता है। यह समझाने के बाद वे कहते हैं कि सूर्य, चंद्र, अग्नि के पीछे का तेज मैं ही हूँ। मैं ही पृथ्वी को धारण करने वाला बल हूँ, मैं ही सोमरूपी रस हूँ, मैं ही प्राण-अपान से युक्त जठराग्नि हूँ, मैं ही संपूर्ण प्राणियों के हृदय में अंतर्यामी रूप में स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होते हैं। वे कहते हैं कि इस संसार में क्षर और अक्षर, दो पुरुष हैं पर पुरुषोत्तम, इनसे अन्य ही पुरुष है क्योंकि वह क्षर से अतीत व अक्षर से उत्तम है। परमात्मा के इस पुरुषोत्तम स्वरूप को जानने वाला मनुष्य ज्ञानवान तथा कृतकृत्य हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण के इन पावन वचनों के साथ ही श्रीमद्भगवद्गीता के पंद्रहवें अध्याय की समाप्ति होती है।]

सोलहवें अध्याय का प्रारभ भी श्रीभगवान् के निम्न सूत्र के साथ होता है और वे कहते हैं कि-

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ 1 ॥

शब्दविग्रह-अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोग-व्यवस्थितिः, दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम् ॥ 1 ॥

शब्दार्थ- भय का सर्वथा अभाव (अभयम्), अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता (सत्त्वसंशुद्धिः), तत्त्वज्ञान के लिये ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति (ज्ञानयोगव्यवस्थितिः), और (च), सात्त्विकदान (दानम्), इन्द्रियों का दमन (दमः), भगवान्, देवता और गुरुजनों की पूजा तथा अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण एवं (यज्ञः), वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन तथा भगवान् के नाम और गुणों का कीर्तन (स्वाध्यायः), स्वधर्मपालन के लिये कष्ट सहना (तपः), और (च), शरीर तथा इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता (आर्जवम्)।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

अर्थात् श्रीभगवान बोले कि भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की अत्यन्त शुद्धि, ज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति और सात्विक दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, कर्त्तव्यपालन के लिये कष्ट सहना और शरीर, मन, वाणी की सरलता।

श्रीमद्भगवद्गीता के इस षोडश अध्याय में परमेश्वर, परमात्मा, पुरुषोत्तम से सहज सबन्ध बना लेने वाले, सद्गुणों तथा सत्कर्मों को आधार बनाने वाले दैवीय गुणों के अधिकारी दैवी सम्पत्ति प्राप्त व्यक्तित्वों तथा इनके विपरीत आसुरी गुणों वाले व्यक्तियों का वर्णन किया गया है, अतः इस अध्याय को दैवासुरसपद्विभाग योग नाम दिया गया है।

गीता के पूर्व अध्यायों में (6/15 तथा 9/11 एवं 9/12) श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा भी था कि आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य मेरी ओर श्रद्धा का भाव न रखकर तिरस्कार का भाव रखते हैं जबकि दैवी प्रकृति से युक्त प्राणी मेरे प्रति अनन्य भक्ति का भाव रखते हैं (9/13 एवं 9/14)। इससे पूर्व के अध्याय में भी श्रीभगवान् ने अर्जुन को समझाया था कि मुझे मेरे पुरुषोत्तम रूप से जानने वाले मनुष्य सभी प्रकार से मेरा ही भजन करते हैं। (गीता-15/18)। ऐसे भक्तों के, जो परमात्मा के पुरुषोत्तम रूप के प्रति अनन्य भक्ति भाव रखते हैं अथवा ऐसे व्यक्तियों के जो अज्ञानवश आसुरी भाव से युक्त हैं- उनके लक्षण क्या होते हैं, इस प्रश्न का उत्तर देने के उद्देश्य से ही श्रीभगवान् इस सोलहवें अध्याय की शुरुआत करते हैं।

इस अध्याय के प्रारंभ तक श्रीभगवान् लगभग प्रत्येक जिज्ञासा को, जो किसी भी आध्यात्मिक पथ के पथिक के मन में उभर सकती है-उसका, उत्तर दे चुके हैं। मात्र अब इस प्रश्न का उत्तर देना शेष है कि प्रत्येक जीवात्मा की जो मौलिक प्रवृत्ति है, वह हमारी प्रगतियात्रा में कैसे सहायक अथवा कैसे बाधक बनती है? ऐसा इसलिए क्योंकि प्रकृति के तीनों गुण-सत्, रज तथा तम एवं उनके मूलभूत गुण तो स्थिर हैं और सभी पर समान तरह से उनके ये प्रभाव लागू होते हैं परन्तु वैयक्तिक परिणामों में भिन्नता प्रत्येक मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्ति में भिन्नता के कारण मिलती है।

इन वृत्तियों का रूपान्तरण ही इस अध्यात्मिक यात्रा की अंतिम चुनौती एवं आखिरी पड़ाव कहा जा सकता है। चूंकि ईश्वर या पुरुषोत्तम या परमात्मा-प्रकृति के गुणों से परे हैं परन्तु उन तक पहुँचने के लिए पथ प्रकृति के गुणों के मध्य से ही जाता है। अतः बिना इन प्रवृत्तियों को समझे और सुलझाए, उन पुरुषोत्तम तक पहुँच पाना संभव नहीं, जिनका उल्लेख श्रीभगवान् विगत अध्याय में कर चुके हैं।

इस अध्याय में श्रीभगवान् साररूप में ये समझाने की शुरुआत करते हैं कि इन आन्तरिक वृत्तियों का रूपान्तरण कुछ प्रवृत्तियों के प्राणियों द्वारा सहज संभव है और कुछ के द्वारा संभव नहीं है। जिनके द्वारा यह सहजता से संभव है- वैसे प्राणी दैवीय प्रवृत्ति के हैं और इन दैवीय प्रवृत्ति के मनुष्यों के लक्षणों को श्रीभगवान् सर्वप्रथम बताते हुए कहते हैं कि उनके गुणों में अभय, अन्तःकरण की निर्मलता, ज्ञान के लिए योग में दृढ़ स्थिति, इन्द्रिय संयम, यज्ञ, स्वाध्याय, कर्तव्यपालन के लिए कष्ट सहना एवं शरीर, मन, वाणी की सरलता आदि गुण समिलित होते हैं।

भय का आधार या तो स्वार्थ है अथवा अहंकार। या तो व्यक्ति प्रतिष्ठा के नाश के भय से चिंतित है अथवा निन्दा-अपमान के भय से चिंतित है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि दैवी प्रवृत्ति के लोगों में किसी भी तरह के भय का सर्वथा अभाव होता है। साथ ही उनके अन्तःकरण में सात्विक गुणों की उपस्थिति होती है अर्थात् उनका अंतःकरण काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इत्यादि विषयों की मलिनता से विषाक्त नहीं होता वरन् पूर्णरूपेण निर्मल होता है। जिसके हृदय में भय न हो, विषयों के विकार न हों, स्वाभाविक है कि उसका चित्त नित-निरन्तर परमात्मा के ध्यान में ही स्थित होगा। इस अवस्था व गुण को श्रीभगवान् ज्ञानयोग स्थिति कहकर के पुकारते हैं।

इन गुणों के अतिरिक्त श्रीभगवान् कहते हैं नित्य दान, यज्ञ जैसे कर्म करने वाला, संयमित जीवन जीने वाला, स्वाध्याय में निरत रहने वाला, अपने धर्म व कर्त्तव्य के पालन हेतु कष्टों को सहने के लिए तैयार रहने वाला तपस्वी पुरुष, जिसके भीतर शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण की सरलता अर्थात् आर्जव सदा उपस्थित हैं-ऐसे गुणों को धारण करने वाला दैवीय प्रकृति का स्वामी कहलाता है। •

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

समग्र स्वतंत्रता की प्राप्ति

आज भी हमारी स्वतंत्रता अपूर्ण कही जा सकती है। स्वतंत्रता केवल भौगोलिक नहीं होती है, यह मानसिक भी होती है और आज भी हम मानसिक रूप से परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़े हुए हैं। हमने राजनैतिक स्वतंत्रता तो अवश्य प्राप्त ली है परन्तु मानसिक स्वतंत्रता या मानसिक आजादी हमें आज तक हासिल नहीं हो पाई है। क्या हमने सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है? वास्तविकता यही है कि हमारी मानसिक गुलामी या मानसिक दासता के कारण हमारी स्वतंत्रता आधी-अधूरी है।

इंग्लैंड की परपराओं, वेशभूषाओं, भाषा, उनकी शिक्षा प्रणाली, न्याय प्रणाली और उनके बनाये गये कानूनों आदि को श्रेष्ठ मानना और स्वदेशी भारतीय परपराओं, वेशभूषाओं, भारतीय लिपि (देवनागरी लिपि) भारतीय भाषाओं, भारतीय शिक्षा प्रणाली, चिकित्सा प्रणाली, न्याय प्रणाली तथा अन्य सभी भारतीय वस्तुओं को हेय अथवा कमतर मानने की भावना ही मानसिक गुलामी या मानसिक दासता होती है।

अंग्रेज हमारा मानसिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक शोषण किया करते थे इसलिए हम भारतीय अंग्रेजों से नफरत करते थे और उनको भारत से बाहर भगाना चाहते थे। हम लोग अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने में भले ही सफल हो गये हों परन्तु तब भी वर्तमान में वे ही तौर तरीके अपनाये जा रहे हैं जो कि अंग्रेजों द्वारा अपनाये जाते थे। शासन एवं प्रशासन में भारतीय लोग आ अवश्य गये हैं परन्तु उनके अधिकांश कार्य अंग्रेजों के समान होने के कारण वे भी अंग्रेजों की तरह ही प्रतीत होते हैं। बस अंतर केवल इतना ही लगता है कि वे गोरे अंग्रेज थे और ये काले अंग्रेज हैं।

विश्व के जिन देशों ने दूसरे देशों से स्वतंत्रता प्राप्त की उनमें से कुछ देशों ने स्वतंत्रता हासिल करने के तत्काल बाद शासक देशों की परपराओं, संस्कृतियों, भाषाओं, खान-पान व रहन-सहन आदि को छोड़कर अपने-अपने देशों की परपराओं, संस्कृतियों, भाषाओं को अपना लिया।

इसके विपरीत राजनैतिक स्वतंत्रता के 70 साल गुजर जाने के बावजूद हमने अंग्रेजों की अधिकांश परपराओं, वेश-भूषाओं, खान-पान व रहन-सहन, उनकी भाषा, उनकी लिपि (रोमन लिपि) उनके कानूनों आदि को आज तक नहीं छोड़ा है। कुछ चीजें एवं कार्य ऐसे अवश्य हो सकते हैं जो कि विश्व के सभी देशों के नागरिकों के लिए उपयोगी तथा सार्थक हों, परन्तु सभी चीजें एवं सभी कार्य सभी देशों के नागरिकों के लिए उपयोगी तथा सार्थक कदापि नहीं हो सकते हैं।

इंग्लैण्ड तथा यूरोप के ठण्डे देशों में टाई बाँधना उपयुक्त हो सकता है लेकिन भारत जैसे देश में सभी मौसमों में टाई बाँधना उचित नहीं जान पड़ता है जबकि अपनी मानसिक गुलामी के कारण हमारे ही कुछ लोग टाई बाँधने में गर्व महसूस करते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में काले चोगे पहनकर डिग्रियाँ बँटवाई जाती हैं। अदालतों में काले चोगे धारण करके बहसें करवाई जाती हैं। प्रकाश की ज्योति बुझने को हमारे देश में अपशकुन माना जाता है परन्तु हम लोग बहुत गर्व के साथ मोमबत्तियाँ बुझाकर तथा केक काटकर अपने बच्चों के जन्मदिवस मनाया करते हैं।

अंग्रेजों द्वारा बनाए गये कुछ कानूनों को हम यथावत अपना रहे हैं। अंग्रेजों द्वारा लिखवाये गये झूठे और भ्रामक इतिहास को हम लोग आज भी अपने छात्रों को पढ़ा रहे हैं। लॉर्ड मैकाले द्वारा चलाई गई शिक्षा प्रणाली को हम लोग आज तक ढो रहे हैं। अंग्रेजों के जमाने में भारत से कच्चा माल कौड़ियों के मोल इंग्लैण्ड भिजवाया जाता था और इंग्लैण्ड से तैयार माल अत्यन्त ऊँचे दामों पर भारत में लाया जाता था।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

भारत से अंग्रेजों के चले जाने के बावजूद भारत का आर्थिक शोषण जारी रहना क्या हमारी स्वतंत्रता का प्रतीक है? विश्व के कुछ देशों की प्रभावशाली महिलायें सोशल मीडिया की मदद से भारतीय महिलाओं से सलाह माँगती हैं कि वे अमुक अवसर पर कौन सी साड़ी पहनें परन्तु अपनी मानसिक दासता के कारण कुछ भारतीय महिलाएँ अंग्रेज महिलाओं जैसे वस्त्र धारण करने में गर्व महसूस करती हैं।

सपूर्ण विश्व के विद्वान एवं भाषाविद् भारत की देवनागरी लिपि को एक वैज्ञानिक एवं विकसित लिपि मानते हैं, परन्तु मानसिक गुलामी की भावना से ग्रसित हमारे ही कुछ लोग रोमन लिपि को एक सरल, विकसित तथा उपयोगी लिपि मानते हैं। इसलिए आजकल हमारे देश के कुछ लोग अपने मोबाइल फोनों, लैपटॉपों से अपने अधिकांश संदेश (मैसेज) रोमन लिपि में ही लिखते हैं।

अपनी सरलता एवं वैज्ञानिकता के कारण हमारी हिन्दी भाषा सपूर्ण विश्व में तेजी के साथ पनप रही है परन्तु हमारे देश के कुछ लोग आज भी हिन्दी को अविकसित तथा अनुपयोगी भाषा मानते हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय, संसद, केन्द्रीय शासन, केन्द्रीय प्रशासन एवं संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं में आज भी अंग्रेजी का ही बोलबाला है। स्वदेशी को अपनाने के ढोंग तो बहुत किये जाते हैं परन्तु स्वदेशी को कुचलने के लिए सभी संभव प्रयास किये जा रहे हैं। भारत में जब तक अंग्रेजों की परपराएँ, उनकी भाषा अंग्रेजी और उनके अधिकांश तौर-तरीके चलते रहेंगे तब तक यह स्वीकार करने में मानसिक कष्ट होता रहेगा कि हम आजाद हो गये हैं।

कोई यह तो बताये कि क्या हम वास्तव में आजाद या स्वतंत्र हो गये हैं? सच्ची आजादी तो तभी हासिल हो पायेगी जब हम अंग्रेजों की भाषा अंग्रेजी, उनकी गलत परपराओं, निरर्थक कानूनों आदि को त्यागकर जन-जन की भाषा हिन्दी, भारतीय परपराओं और संस्कृति, सभ्यता को हम अपना लेंगे। हमें अपने मौलिक विचारों, मान्यताओं और मूल्यों की स्थापना करनी चाहिए। दूसरों के दिखाए रास्ते से मंजिल की प्राप्ति कभी भी संभव नहीं है। हमें अपने ढंग से अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए। ऐसे ही हमें समग्र स्वतंत्रता की प्राप्ति होगी।

• • •

तुर्की में जकीर नाम के एक फकीर हुए हैं। वे नदी किनारे कुटी बना कर रहते थे। एक दिन नदी में एक सेब बहता आ रहा था। जकीर ने उसे पकड़ लिया। अभी उसे खाना ही चाह रहे थे कि उनके अंतःकरण से आवाज आयी- फकीर! क्या यह तेरी संपत्ति है? क्या तूने इसे परिश्रम से पैदा किया है? यदि नहीं तो इसे खाने का तुझे क्या अधिकार है? सेब झोले में डाल कर वे अब उसके स्वामी की खोज में नदी के चढ़ाव की ओर चल निकले। थोड़ी दूर पर एक सेब का बाग मिला। कुछ सेब के वृक्षों की डालें पानी को छू रही थीं। फकीर को विश्वास हुआ कि सेब यहीं से टूटा होगा।

उन्होंने बाग के माली से कहा- यह लीजिए आपका सेब, नदी में बहा जा रहा था। माली बोला- मैं तो बाग का रखवाला मात्र हूँ, इसकी मालकिन तो बुखारा की राजकुमारी है। फकीर वहाँ से बुखारा के लिए रवाना हुआ। कई दिन की पैदल यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा और वह सेब राजकुमारी को देने के लिए उपस्थित हुआ। पूरी घटना जानकर राजकुमारी हँसी और बोली- अरे इसे आप वहीं खा लेते, यहाँ तक लाने की क्या आवश्यकता थी? फकीर बोले- राजकुमारी जी! आपकी दृष्टि में एक सेब का कुछ मूल्य नहीं पर इस सेब ने मेरा सारा संयम नष्ट कर दिया होता, यदि मैं इसे इसके उचित मालिक के पास न लौटाता।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

गढ़ आला पण सिंह गेला

महाराष्ट्र में पूना के समीप पहाड़ी पर स्थित सिंहगढ़ किला, मराठा योद्धा नरवीर तानाजी मालुसरे की शौर्यगाथा के प्रतीक के रूप में आज भी राष्ट्रप्रेम एवं बलिदानी प्रेरणा का प्रचण्ड प्रवाह लिए हुए है। यह पूर्व में कोन्ढाणा किले के नाम से प्रख्यात था। माना जाता है कि दो हजार वर्ष पूर्व ऋषि कौण्डिन्य ने यहाँ तप किया था। यह किला कई युद्धों का साक्षी रहा है, जिसमें सबसे प्रमुख 4 फरवरी 1670 का सिंहगढ़ का युद्ध था। यह दुर्ग सह्याद्रि पहाड़ियों की भूलेश्वर श्रृंखलाओं पर एक विशाल चट्टान पर स्थित है।

चारों ओर गहरी खाई एवं खड़ी चढ़ाईदार ढलान के कारण प्राकृतिक रूप से सुरक्षित यह किला अभेद्य माना जाता रहा। इसमें कुछ ही स्थानों पर दीवारें खड़ी की गयी हैं। इसके दक्षिणी-पूर्वी एवं उत्तरी-पूर्वी छोरों पर क्रमशः कल्याण दरवाजा और पूना दरवाजा स्थित हैं। पूना दरवाजा मुख्य द्वार है, जबकि कल्याण दरवाजा पिछला द्वार।

यह किला मराठा साम्राज्य में राजगढ़, पुरन्दर एवं तोरण जैसे अहम् किलों की लड़ी के बीच स्थित था, जिसका विशिष्ट रणनीतिक महत्त्व था। कोन्ढाणा किला सन् 1647 से सन् 1649 और फिर सन् 1656 से 1665 तक मराठाओं के अधिकार में रहा लेकिन सन् 1665 की पुरन्दर की संधि में यह किला पुनः मुगलों के हाथों में चला गया था।

ज्ञातव्य हो कि शिवाजी महाराज के पिता शाहजी भोंसले मुगल साम्राज्य में एक सैन्य अधिकारी थे। बालक शिवा का लालन-पालन माता जीजाबाई की देखरेख में हुआ। जीजाबाई बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी, जिसकी गोद में बालक शिवा ने रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों का पारायण किया था। घर में साधु-संतों का आना-जाना होता रहता था। दादोजी कोण्डदेव की देखरेख में बालक शिवा को सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। बाल्यावस्था में ही बालक शिवा में स्वराज की भावना कूट-कूट कर भर गयी थी।

यह वह दौर था जब अधिकांश भारत में मुगल सल्तनत का बोलबाला था। दिल्ली में औरंगजेब मुगल साम्राज्य का केंद्र था, जबकि दक्षिण में बीजापुर, अहमदनगर एवं गोलकोण्डा इसके गढ़ थे। शिवाजी महाराज के पिता शाहजी भौंसले इब्राहिम आदिल शाह के सेनापति थे, जिन्हें पूना क्षेत्र का जिम्मा सौंपा गया था लेकिन इनके बेटे शिवाजी को आदिलशाही की हूकूमत स्वीकार नहीं थी और उनमें स्वराज की स्थापना के अंकुर फूट चुके थे।

इसके लिए किशोर शिवाजी ने स्वाभिमानी एवं साहसिक मराठा युवकों को संगठित किया व उन्हें सैन्य प्रशिक्षण दिया और सन् 1645 में मात्र 15 वर्ष की आयु में तोरण के किले को फतह कर हिंदवी स्वराज्य की ओर पहला कदम बढ़ाया। इस तरह इनका विजयी अभियान आगे बढ़ा। मुगलों की विशाल सेना से लड़ने के लिए उन्होंने छापामार युद्ध का प्रयोग किया। सन् 1647 में शिवाजी महाराज रणनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण कोन्ढ़ाणा किले को अपने अधिकार में ले लिया। क्रुद्ध आदिल शाह ने शिवाजी के पिता शाहजी भौंसले को जेल में डाल दिया, जिनको जेलमुक्त करने के समझौते में कोन्धाणा किला पुनः मुगल कब्जे में चला गया। सन् 1656 में शिवाजी महाराज ने पुनः किले को कब्जे में ले लिया। इस किले पर मुगलों द्वारा क्रमशः सन् 1662, 1663 एवं 1665 में हमले होते रहे लेकिन इस अभेद्य किले में कोई प्रवेश नहीं कर पाया। सन् 1665 तक शिवाजी महाराज लगभग 35 किले अपने अधिकार में कर चुके थे।

इस तरह मुगल साम्राज्य के बीच मराठा साम्राज्य का स्वदेशी झण्डा लहलहा रहा था, जो दिल्ली में बैठी मुगल सल्तनत को नागवार गुजर रहा था। सन् 1665 में मुगल साम्राज्य के राजपूत सेनापति जयसिंह के नेतृत्व में विराट मुगल सेना ने मराठा साम्राज्य को ध्वस्त करने के उद्देश्य के साथ हमला किया। मुगलों की विराट सेना के सामने संभावित पराजय एवं अपनी प्रजा की अनावश्यक क्षति को देखते हुए शिवाजी महाराज ने मध्यम मार्ग अपनाया तथा पुरन्दर की संधि हुयी, जिसमें 23 किले वापिस मुगलों को सौंपे

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

गये व शेष 12 उन्होंने स्वयं रखे इस संधि में कोन्ढाणा का किला मराठाओं के हाथ से निकल गया।

रणनीतिक रूप से कोन्ढाणा एक महत्त्वपूर्ण किला था, साथ ही माता जीजाबाई को इससे विशेष लगाव था। माँ के आग्रह पर शिवाजी महाराज ने इसे पुनः अपने अधिकार में लेने की योजना बनाई लेकिन इस अभेद्य किले को फतह करना सरल कार्य नहीं था, जहाँ राजपूत सरदार उदयभान सिंह राठौर के नेतृत्व में पाँच हजार मुगल सैनिक तैनात थे। जब शिवाजी महाराज के बालमित्र एवं कोली सेनापति तानाजी मालुसरे को इस योजना का पता चला तो उन्होंने अपने बेटे की शादी की तैयारियों को टाल कर इस अभियान का जिम्मा स्वयं अपने हाथों में ले लिया। अपने प्रिय राजा के संकेत और राजमाता के संकल्प एवं विश्वास को धारण कर तानाजी असंभव से लगने वाले दुस्साहसिक अभियान पर आगे बढ़े, जो व्यावहारिक रूप से आत्मघाती एवं मूर्खतापूर्ण था।

इसके लिए तानाजी ने पहले किले की तलहटी में बसे कोलि समुदाय को अपने विश्वास में लिया, किले की पूरी जानकारी प्राप्त की और फिर किले में छद्मवेश में जाकर पूरा मुआयना किया। किले में जश्न की रात को आक्रमण का शुभमुहूर्त चुनकर 4 फरवरी 1670 की घुप्प अंधेरी रात में किले की खड़ी चढ़ाई पर अपने जांबाज चार सौ मराठा योद्धाओं के साथ निकल पड़े। पालतू गोह यशवन्ती की मदद से वे खड़ी दीवार पर चढ़े। जश्न में मशगूल सैनिकों को मूली-गाजर की तरह काटते हुए वे आगे बढ़ते गए।

इसी क्रम में तानाजी का किले के सरदार राजपूत उदयभान सिंह राठौर के साथ द्वन्द्व युद्ध भी हुआ, जिसमें तानाजी मालुसरे का ढाल वाला हाथ कट गया, जिस पर ये पगड़ी लपेट कर अंतिम समय तक युद्ध करते रहे और उदयभान को परास्त करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये। उधर कल्याण दरवाजा खुला व बाहर इंतजार कर रहे मराठा सैनिक किले में प्रवेश कर गये। इनके भाई सूर्याजी मालुसरे ने बाकी मुगल सैनिकों का सफाया करते हुए कोन्ढ़ाणा किले को अपने अधिकार में ले लिया।

तानाजी की मृत्यु का शोक समाचार पाकर शिवाजी महाराज के दुःखी हृदय से स्वर फूटे थे- गढ़ आला, पण सिंह गेला, अर्थात् किला तो जीत लिया लेकिन शेर को खो दिया। तब से यह किला सिंहगढ़ के नाम से जाना गया। तानाजी की स्मृति में यहाँ उनका स्मारक बना हुआ है। इस तरह सन् 1670 में किला पुनः मराठा अधिकार में आ गया। इसके बाद मराठा साम्राज्य का क्रमशः विस्तार होता गया। सन् 1674 में शिवाजी महाराज को छत्रपति की उपाधि से नवाजा गया। इसके बाद सिंहगढ़ किला सन् 1689 तक छत्रपति शिवाजी महाराज के शासनकाल में पूरी तरह मराठा अधिकार में रहा। इस तरह सन् 1646 में चार किलों एवं मात्र दो हजार सैनिकों के साथ शुरु किया गया मराठा स्वराज्य छत्रपति शिवाजी महाराज के अंतिम समय सन् 1680 तक तीन सौ किले एवं एक लाख सैनिकों के साथ अपनी गौरव पताका फहरा रहा था। निसंदेह रूप से इस साम्राज्य की नींव में तानाजी मालुसरे जैसे योद्धाओं का शौर्यपूर्ण त्याग-बलिदान था।

स्वतंत्रता संग्राम आदोलन में भी सिंहगढ़ किले की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। बाल गंगाधर तिलक गर्मियों में यहाँ दो माह वास करते थे, उनका कहना था कि यहाँ से उन्हें स्वराज की प्रचण्ड प्रेरणा मिलती है। यहीं से उन्होंने 'द आर्कटिक होम इन द वेदाज' जैसी रचना लिखी और कर्मयोग को प्रधानता देते गीता रहस्य जैसे ग्रंथ पर कार्य किया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गाँधीजी की तिलकजी के साथ ऐतिहासिक भेंट भी यहीं हुई थी। सुभाषचंद्र बोस भी तिलकजी से यहीं मिले थे। आज एनडीए (नेशनल डिफेंस एकेडमी, खड्गवास्ला, पूना) के कैडेट्स शौर्य से ओत-प्रोत इस वीरभूमि पर युद्ध का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, जहाँ उन्हें नियमित अन्तराल में युद्ध के पूरे तामझाम के बीच यहाँ की चढ़ाईयों में युद्ध का अभ्यास करवाया जाता है।

पिछले ही दिनों तान्हाजी- द अनसंग वॉरियर फिल्म के रूप में एक श्रद्धांजलि इस गुमनाम योद्धा को दी गयी है। निर्देशक ओम राउत एवं प्रोड्यूसर अजय देवगन के समिलित प्रयास से बनी यह फिल्म ऐतिहासिक तथ्यों को थोड़ी-बहुत सिनेमाई छूट के बावजूद नरवीर तानाजी मालुसरे के जीवन पर एक प्रेरक दस्तावेज है, जिसमें सभी कलाकार अपने अभूतपूर्व अभिनय के साथ मराठा शौर्य एवं बलिदान की गाथा को जीवन्त करते हैं। दर्शकों में राष्ट्रप्रेम एवं शौर्य बलिदान की भावना भरने के लिए ऐसे नेक प्रयासों की जितनी सराहना की जाए कम है। • • •

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

परम पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी-1

अध्यात्म- अंतरंग का परिष्कार

[गतांक से आगे]

परमपूज्य गुरुदेव के उद्बोधनों की यह विशिष्टता है कि वे भारतीय चिंतन के सर्वाधिक गुह्य विषयों का प्रतिपादन अत्यंत सहज एवं सारगर्भित भाषा में करते हैं। प्रस्तुत उद्बोधन में भी वे अध्यात्म का अर्थ कुछ इन्हीं शब्दों में समझाते दृष्टिगोचर होते हैं। वे कहते हैं कि आध्यात्मिकता ज्ञान की सर्वोच्च धारा है और उसका मूल उद्देश्य जीवात्मा के स्तर को ऊपर उठाना और उसकी भावना का विकास करना है। पूजा कर्म करते समय पुष्प अर्पण, चंदन अर्पण, मिष्ठान्न अर्पण से लेकर दीपक के प्रज्वलन की वे एक सम्यक् व्याख्या करते हुए कहते हैं कि इन सबका मूल उद्देश्य मनुष्य के अंतरंग का परिष्कार करना है। यदि मनुष्य का अंतरंग परिष्कृत हो जाता है तो उसे दैवीय शक्तियों का सहयोग स्वतः ही प्राप्त होने लग जाता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

ज्ञान की सर्वोच्च धारा- आध्यात्मिकता

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

देवियों, भाइयों! जो लोग अपने कार्य पूरे करने के लिए, पैसे इकट्ठे करने के लिए और दूसरी चीजों के लिए अपनी जिन्दगी को तबाह करते रहते हैं, मित्रों! मैं उनको समझदार कहूँ? कैसे समझदार कहूँ? मैं तो उन्हें नासमझ कहूँगा। आपकी दुनिया नासमझ है और आध्यात्मिकता का उद्देश्य आदमी की नासमझी को समझदारी में समन्वय करना है। मेरे साथ यही हुआ। पैंतालिस वर्ष पूर्व मेरी नासमझी में समझदारी का समन्वय किया गया और मैं छोटा सा नासमझ मनुष्य और छोटा सा मगरमच्छ स्वार्थों का मारा, इच्छाओं का मारा, वासनाओं का मारा, एक गया-गुजरा छोटा सा मनुष्य- मेरे पास ज्ञान की धारा की एक अमृत किरण मेरे पास आई, तो मैं न जाने क्या से क्या हो गया।

मेरे साथ मेरे गुरुदेव ने जो किया और मैं चाहता हूँ कि स्थिति को भुला करके मैं भी आपके साथ वही करूँ, जो मेरे गुरुदेव ने मेरे साथ किया। मेरे गुरुदेव ने मेरा ज्ञान की धारा से परिचय कराया कि आध्यात्मिकता उस चीज का नाम है जो मनुष्य के जीवन में समाविष्ट हो जाती है और जीवन में जो ज्ञान उतारा जा सकता है, उस चीज का नाम आध्यात्मिकता है।

मित्रों! मुझे बहुत पहले यह मालूम था कि आध्यात्मिकता उस चीज का नाम है जो थोड़ी सी पूजा, थोड़े से टंटघंट जैसी चीजों में काम में लायी जाती है। मुझे आध्यात्मिकता का मतलब इतना मालूम था कि माला घुमायी जा सकती है, पूजा की जा सकती है, रामायण, गीता, भागवत पढ़ी जा सकती है, भगवान को चावल चढ़ाया जा सकता है, रोली चढ़ायी जा सकती है। आरती उतारी जा सकती है।

अंतरंग का परिष्कार है अध्यात्म

आध्यात्मिकता के बारे में पहले मेरा यही ख्याल था फिर मेरा यह ख्याल बदल गया। मेरी अकल और समझ को बदल दिया गया। उसमें जमीन-आसमान जैसा फर्क हो गया। मुझे जब असलियत मालूम पड़ी, तो मैंने कुछ और ही बात पायी। असलियत जब मैंने देखी तो यह पाया कि जो भी कर्मकाण्ड है, जो भी उपासना है, उसका ऊपर का मतलब और उनका उद्देश्य एक ही है कि मनुष्य का अंतरंग का, उसकी जीवात्मा का स्तर ऊँचा उठाया जाय और मनुष्य की भावनाओं का विकास किया जाय।

‘गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना’ वर्ष

मित्रों! भावनाओं का घटियापन है तो आदमी घटिया ही बना रहेगा। श्रेष्ठ नहीं बन सकता। अगर भावनाएँ ऊँची हैं तो वह कभी भी ऊँचा बन सकता है। ऊँचा व्यक्तित्व श्रेष्ठ व्यक्तित्व की निशानी है। ऊँचा व्यक्तित्व जहाँ कहीं भी होगा, ऊँचा व्यक्तित्व जहाँ कहीं भी निवास करता होगा, उसको लोकहितप्रधान और पालक माना जायेगा और घटिया वाला व्यक्तित्व यदि मनुष्य का है, तो दुनिया भर की असुविधायें और कठिनाइयाँ पैदा हो रही होंगी। आंतरिक जीवन का तो सवाल ही कहाँ पैदा होता है। इसलिए हमें कर्मकाण्डों का, पूजा-उपासना का सारे का सारा रहस्य सिखाया गया है।

पुष्प अर्पण का अर्थ

यह बात मेरी समझ में आ गयी और मेरे रोम-रोम में समा गयी। मैंने यह पाया कि जो कुछ भी हमें पूजा-पाठ के क्रिया-कृत्य करने हैं, उनके माध्यम से हमको अपने व्यक्तित्व, अपनी विचारणा, अपनी भावना और क्रिया पद्धति का परिष्कार करना चाहिए। यह तथ्य मुझे मालूम पड़ा। पूजा का यह रहस्य मुझे मालूम पड़ा। भगवान के चरणों पर क्यों गुलाब का फूल चढ़ाया जाता है, मेरी समझ में आ गया। खिलता हुआ गुलाब, हँसता हुआ गुलाब, मुस्कराता हुआ गुलाब, सुगन्ध से भरा हुआ गुलाब का फूल इस बात का अधिकारी है कि भगवान के चरणों में स्थान पाये और भगवान के गले में स्थान पाये।

मित्रों! गुलाब केवल उस पौधे का नाम नहीं है जो वनस्पति के ढंग से पैदा होता है। भगवान उस आदमी का नाम नहीं है जो गंदगी में रहता है और गुलाब का फूल अगर सूंघने को मिल जाये तो फूल कर कुप्पा हो जाता है। गुलाब के फूल से क्या लेना-देना भगवान को? सारी की सारी दुनिया में गुलाब ही तो खिले हुए हैं। बोलो क्या करेगा वह तुहारा गुलाब ले करके?

भगवान को गुलाब समर्पित करने का मतलब उसकी किसी जरूरत को पूरा करना नहीं है, बल्कि अपने मन के ऊपर एक छाप, एक संस्कार को डालना है कि मनुष्य का जीवन इस गुलाब के पुष्प की तरह से खिला हुआ होगा तो हम भगवान का प्यार और भगवान की समीपता पाने का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। क्या हम गुलाब के फूल के तरीके से खिलने की कोशिश करते हैं? क्या हमने अपने आप को गुलाब की तरह सुगन्धित बनाया? क्या अपने आपको हँसता हुआ आदमी बनाया? क्या अपने आपको पुष्प बनाया? क्या अपने आपको हँसता-हँसाता, खिलता-खिलाता व्यक्ति बनाया? क्या अपनी खुशी को दूसरे आदमी को खुशी देने का अधिकार दिया? अगर हमने ऐसा किया तो समझना चाहिए कि हमने फूल चढ़ाने की बात और फूल चढ़ाने का रहस्य जान लिया। अगर हमारी समझ में इतनी सी बात आ गयी तो मैं समझता हूँ कि आपका फूल चढ़ाना सार्थक हो गया।

चंदन अर्पण का अर्थ

मित्रों! इसी तरीके से हमने भगवान को चंदन चढ़ाया, कर्मकाण्ड किया। सिन्दूर चढ़ाने का मतलब यह नहीं कि भगवान गन्दगी में रहता है और उसकी नाक में बदबू भरी रहती है। उनको चंदन लगा देंगे तो उनका काम चल जायेगा। इसका यह मतलब नहीं है। भगवान जहाँ रहता है, वहाँ खुशबू की कोई कमी नहीं है। वहाँ सुगन्धित पदार्थ बहुत भरे रहते हैं। वहाँ धूपबत्तियाँ बहुत जलती रहती हैं। अगर हम चंदन न चढ़ायें तो भगवान जी को कोई तकलीफ होने वाली नहीं है।

सुगन्धित पदार्थ चढ़ाने का मतलब यह है कि हमारा जीवन शांत और सुगन्धित हो। जहाँ कहीं भी चंदन लगाया जाय, वहाँ शांति और सुगंन्ध हो। जहाँ कहीं भी मस्तिष्क पर

कुसुमस्तबकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद् वने विशीर्येदथ वा॥
-नीतिशतक

अर्थात् मनस्वी का स्वभाव फूल के गुच्छे के समान दो प्रकार का होता है। या तो वह सबके सिर पर रहता है अथवा जंगल में गिर कर सूख जाता है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

लगाया जाय, उसे शीतल कर दें। चंदन के समुख जो भी पौधे उगे हुए हों, वह उन उगे हुए पौधों में अपनी खुशबू उड़ेल दे। हम अपने पास, अपने सम्मुख रहने वाले व्यक्तियों को भी वैसा ही बना दें जैसा कि चंदन अपने समीप के पौधों को सुगन्धित बना देता है। चंदन के आस-पास साँप, बिच्छू के जहर का उस पर असर आया? नहीं आया। वह आदमी जो चंदन के तरीके से अपने जीवन को बना लेता है या बना सकता है- उसी को यह हक है कि हमने चंदन चढ़ा करके, चंदन चढ़ाने का मकसद और चंदन चढ़ाने का उद्देश्य पूरा कर लिया।

मिष्टान्न देने का मर्म

मित्रों! भगवान को हम शक्कर चढ़ाते हैं, मिठाई चढ़ाते हैं। शक्कर चढ़ाने का मकसद और मिठाई चढ़ाने का मतलब क्या है? मिठाई चढ़ाने का मतलब यह है कि भगवान को मीठा प्रिय है। इसका मतलब यह नहीं है कि भगवान को खटाई नापसंद है। इसका मतलब यह नहीं कि भगवान जी मिर्च नापसंद करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे जायके भगवान को पसंद नहीं है।

मिठाई चढ़ाने का मतलब सिर्फ एक है कि भगवान सबसे ज्यादा जिसे प्यार करते हैं, भगवान की सबसे प्रिय वस्तु जो हो सकती है, वह मनुष्य की वाणी की मिठास, मनुष्य के व्यवहार की मिठास, मनुष्य की क्रिया की मिठास, मनुष्य की वृत्तियों की मिठास है। अगर मिठास हमारे जीवन के हर क्रिया-कलापों में घुल जाये, तो हम इस बात के अधिकारी बन सकते हैं कि भगवान को हमारा जीवन और हमारी मनोभावना को मीठे की तरह समर्पित कर सकते हैं। हमारा व्यवहार मिठास से युक्त हो।

दीपक जलाने का अर्थ

मित्रों! हम दीपक जलाते हैं। दीपक जलाने का मतलब यह नहीं है कि भगवान की आँखों की रोशनी कम हो गयी है। जब आदमी को कम दिखाई पड़ता है, तो माइनस और प्लस के चश्मे लगाने पड़ते हैं। भगवान जी को मोतियाबिंद हो गया, यह मतलब नहीं है। भगवान जी की आँखें सही हैं। भगवान जी के आँखों को धरती पर रखी किताब पढ़ने में और अखबार पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं आती। उनकी आँखें सही हैं।

फिर दीपक जलाने से क्या मतलब है? हमको तो दीपक जलाने की जरूरत होती है, क्योंकि दिन में जब अंधेरा हो जाता है और बादल छा जाते हैं और प्रकाश कम होता है, तो बत्ती जलानी पड़ती है। ठीक है आँखें कमजोर हैं, इसलिए बत्ती जलानी पड़ती है। लेकिन भगवान जी की आँखें कमजोर नहीं हैं। भगवान जी की आँखों के आगे दीपक जलायें या न जलायें, उन्हें कोई दिक्कत होने वाली नहीं है। फिर दीपक जलाने की आवश्यकता क्या है? दीपक जलाने की जरूरत केवल यह है कि हम अपने जीवन में एक तरह की भावना का विकास करें कि भगवान को दीपक प्यारा है।

भगवान दीपक को मोहब्बत करते हैं। दीपक वह, जिसके मन में जलने की तमन्ना है। दीपक के पेट में प्यार भरा हुआ है। प्यार स्नेह-सत्कार को कहते हैं और स्नेह का दूसरा अर्थ घी भी होता है, तेल भी होता है। जिसके पेट में स्नेह भरा हुआ पड़ा है वह है दीपक। और जिसने यह नीति अख्तियार कर ली है कि मैं दुनिया में उजाला फैलाऊँगा और अंधेरे में उजाला करूँगा- इसके लिए मैं जलने के लिए तैयार हूँ। जो आदमी उजाला करने के लिए जलना मंजूर करता है, वह आदमी उन सितारों की तरीके से है जो रात के समय जब चारों ओर अंधेरा छाया रहता है और उस अंधेरे से जो मुसाफिर रास्ता भूल सकते थे, भटक सकते थे, उनको अपनी छोटी सी समझदारी के द्वारा रास्ता दिखाता रहता है। बच्चे गाते रहते हैं- "ट्विंकल-ट्विंकल लिटिल स्टार, हाऊ आर वंडर व्हाट यू आर।"

मित्रों! इस तरीके से छोटा वाला मनुष्य अपनी छोटी-छोटी प्रवृत्तियों के कारण इस संसार में प्रकाश कैसे फैला सकता है। दूसरों को रास्ता दिखाने वाली जिन्दगी कैसे जी सकता है। हम रास्ता दिखाने वाली जिन्दगी जी सकते हैं। रास्ता दिखाने वाली जिन्दगी गरीब आदमी भी जी सकते हैं और हजारों मनुष्यों को रास्ता दिखा सकते हैं। काश! हमने ऐसी जिन्दगी जी हो। ऐसी जिन्दगी को जीना भगवान की भक्ति का, दूसरे कर्मकाण्डों का, पूजा का उद्देश्य, भगवान का उद्देश्य पूरा कर सकता है। हमारे मन में केवल कर्मकाण्ड की क्रिया समझ में आये और उद्देश्य समझ में आये तो बहुत मुश्किल हो जायेगी। तब हम अपने लक्ष्य तक पहुँच पाएँगे कि नहीं यह कहना मुश्किल है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

भावनाओं का परिष्कार- अध्यात्म

इसलिए मित्रों! मेरे गुरुदेव ने मुझे बताया कि आध्यात्मिकता के सहारे, पूजा के सहारे, गायत्री महामंत्र के सहारे हमें अपने आपका, अपनी जीवात्मा का विकास करना चाहिए और अपनी विचारणाओं, अपनी भावनाओं का परिष्कार करना चाहिए। भावनाओं और विचारणाओं का परिष्कार जहाँ कहीं भी जिस व्यक्तियों ने शुरू किया; छोटे से छोटे, नगण्य से नगण्य, गरीब से गरीब मामूली आदमी महानतम व्यक्ति होते हुए चले गए। भगवान का अनुग्रह, कृपा और वरदान प्राप्त करने के लिए उन्हें इंतजार नहीं करना पड़ा। उन्होंने वह सब कुछ प्राप्त किया जिसकी मामूली आदमी ख्वाब में कल्पना भी नहीं कर सकता।

ऐसी चीजों का हकदार आप में से हर आदमी बन सकता है। अगर आप लोगों को यह ख्याल आये कि आप लोगों को अपना मन, आपको अपनी नीयत, आपको अपना चाल-चलन, आपको अपनी रीति-नीति और आपकी अपनी जिन्दगी की गिरी हुई स्थिति को ठीक कर लेनी चाहिए। इतनी छोटी सी बात अगर आपकी समझ में आ जाये, तो मजा आ जाय। आपको भगवान का प्यार और भगवान की कृपा मिलती हुई चली जाये।

भगवान की निधि

मित्रों! इसी तरीके से निधि भी है। निधि पाने के लिए भगवान की कृपा और भगवान की दया और भगवान की मोहब्बत सुरक्षित रखी हुई है। भगवान बहुत देर से इस इंतजार में बैठा हुआ है कि कोई तो आदमी हो जिनको कि मेरी मोहब्बत पाने का हक है। कोई तो आदमी हो जिनको कि मैं अपना प्यार दूँ। कोई तो आदमी हो जिनको कि मैं अपनी सहायता दूँ।

भगवान ने यही भरोसा किया है और उन्होंने बहुत तरह की बहुतों को सहयता दी है। अर्जुन को उन्होंने कहा- अर्जुन दुनिया में बुराइयाँ बहुत फैली हैं। बुराइयों का मुकाबला करने के लिए अपने आपको जोखिम में डालना चाहिए और दुनिया में से बुराई को दूर करना चाहिए। अर्जुन ने कहा- मुझे आप क्यों झगड़े में फँसाते हैं। इस काम को आप, किसी और को सौंप दीजिए और मुझे तो आप पूजा करने की बात बता दीजिए, जो दुनिया में सबसे सुगम काम है। इससे सुगम काम कोई और नहीं है। यह सब से सस्ता और सबसे सरल काम है। कारोबार चलाना हो तो आपको अकल की जरूरत है। धागा टूटे नहीं और सूत खराब न हो जाय और कपड़ा खराब न हो जाय, बिक्री अच्छी हो, तभी फायदा मिलेगा और माला घुमानी हो तो खट्-खट्-खट् घुमाते रहिए। स्पीड का ध्यान रखना। खट्-खट् माला घुमा दीजिए। सबसे सस्ता और सबसे सरल और सबसे हलका काम है भगवान का।

लेकिन मित्रों! अर्जुन ने कहा- यह माला जैसा सस्ता काम दे दीजिए हमको। 56 लाख आदमी गंगाजी पर बैठे रहते हैं और सटक-सटक माला घुमाते रहते हैं। बस यही काम मैं कर लूँगा, तो भी मेरा काम बन जायेगा। आप झगड़े में मुझे मत फँसाइये। भगवान ने कहा- अर्जुन! तुझे झगड़े में फँसना ही पड़ेगा, क्योंकि मैं जब भी दुनिया में अवतार लेता हूँ, तब मेरे अवतार लेने के दो उद्देश्य हैं- एक उद्देश्य है- "धर्मसंस्थापनार्थाय" और दूसरा है- "परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम"। धर्म की स्थापना और दुष्टों का विनाश। मैं कभी भी कहीं भी आऊँगा तो इन दो कामों के लिए ही स्वयं आऊँगा और कोई भी मेरा मकसद नहीं। अगर मैं मनुष्य के भीतर कभी आऊँगा, तो इन्हीं दो कामों के लिए आऊँगा, तीसरा कोई मकसद नहीं है मेरे आने का। जब मैं आऊँगा तो सभी

युग निर्माण योजना के अन्तर्गत हम सब इस प्रतिज्ञा से आबद्ध हैं कि जीवन का उपयोग केवल कमाने-खाने तक सीमित न रखेंगे वरन् , आत्मनिर्माण और समाज निर्माण की ओर भी समुचित ध्यान देंगे। यह भावना कागजी नहीं रहनी चाहिए। अपनी स्थिति, शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार कुछ न कुछ प्रयत्न हर किसी के लिए संभव हो सकता है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

को इस काम में लगाऊँगा। धर्म की स्थापना करने के लिए जो व्यक्ति अपने स्वार्थ को भुला दे और अपनी सारी शक्ति को खर्च कर डाले- वह आदमी पाप, अन्याय और बुराइयों को दूर करने के लिए अपनी शक्तियाँ खर्च कर डाले। ऐसा तुम्हें भी करना चाहिए।

मित्रों! अर्जुन ने भगवान की बात को मंजूर कर लिया। तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- अपना गांडीव उठा और तीर चला। बाकी सब काम मैं कर लूँगा। अर्जुन ने कहा- मैं थक गया तब? श्रीकृष्ण ने कहा- मैं तुझे थकने नहीं दूँगा। मैं रास्ता भूल गया तब? तब उन्होंने कहा- मैं तेरे घोड़े चलाऊँगा। भगवान आगे-आगे रथ चलाते हुए चले गए और अर्जुन गाण्डीव से तीर चलाता रहा। गांडीव चलाने वाला अर्जुन, जो कि भगवान का काम करने को कटिबद्ध हुआ, भगवान की सहायता करने का अधिकारी हुआ।

धर्म की स्थापना, अधर्म का नाश

यह तो पुराने जमाने की बात हुई। भगवान की आज्ञानुसार गौतम बुद्ध, पूजा-पाठ करते हुए उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि आपका प्यार पाने के लिए मुझे क्या करना होगा। अपने जीवन में क्या काम करना होगा। उन्होंने कहा- एक धर्म की स्थापना और एक पाप का विनाश। इसलिए तुम धर्म की स्थापना करो। लोगों से कहा- "बुद्धं शरणम् गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि।" समाज में संघबद्ध रहो और विवेक बुद्धि की, अकल की सहायता से अज्ञान और अनाचार, अवसाद और छोटापन, परम्पराओं और मान्यताओं, इनके पीछे भागने वाली दुनिया को रोको और कहो- बुद्धं शरणम् गच्छामि- बुद्धि की शरण में जाऊँगा, विवेक की शरण में जाऊँगा। विवेक के अतिरिक्त अन्य सबको निस्तारित कर दूँगा। उन्होंने कहा- सब

संघबद्ध हो जाओ। इकट्ठे हो जाओ।

मित्रों! बुद्ध ने भगवान की आज्ञा मानी। "बुद्धं शरणम् गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि और संघं शरणम गच्छामि" का संदेश लेकर भगवान बुद्ध चले गये और वैदिक हिंसा, तामसी और अंध परम्परा जो देश में फैली हुई थी, उसके लिए उन्होंने धर्मगत संघर्ष किया।

उस जमाने का महान क्रांतिकारी बुद्ध अकेला था और जंगल में बैठा हुआ था। भगवान से उसने कहा- आपने मुझे इतना बड़ा काम सौंपा, मैं किस तरीके से काम करूँगा? मेरे पास रुपया-पैसा कहाँ है और मेरे पास साधन कहाँ हैं? भगवान ने कहा- चल आगे-आगे और मैं आया रुपया ले करके और मित्रों! वे आये, सम्राट अशोक आये। उन्होंने कहा- आप हैं जो भगवान का काम करने के लिए बैठे हैं। उन्होंने कहा- हाँ, भगवान की आज्ञानुसार, भगवान की इच्छानुसार मैंने अपने जीवन को हथेली पर रखा और अपनी सारी की सारी बागडोर भगवान के सुपुर्द कर दी। सम्राट ने कहा- फिर आपको सामान, साधनों की जरूरत होगी। उन्होंने कहा हाँ, मुझे पैसा चाहिए, साधन चाहिए। अशोक ने कहा- भगवान का सारा साधन आपके चरणों पर स्थापित है। सारी की सारी चीजें, धन और दौलत उनके पास आ गयीं। बुद्ध भगवान ने ढाई लाख शिष्यों के माध्यम से समूचे एशिया और सारे विश्व में क्रान्ति की लहर फैलाई और भगवान स्वयं अशोक के रूप में उनकी सहायता कर रहे थे।

भगवान का सहयोग

मित्रों! एक बार देवता और असुर मिलकर समुद्र मंथन करने लगे। उनसे भगवान ने इच्छा और आज्ञा की कि पुरुषार्थ किया जाना चाहिए और इस विश्व-वसुधा में जो अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, उनको निकाला जाना चाहिए। देवताओं ने कहा- हम हार जाएँगे और असुरों ने कहा- हम हार जाएँगे। भगवान ने कहा- मैं तो जिंदा हूँ, तुम्हें हारने नहीं दूँगा। समुद्र मंथन होने लगा। मंदराचल पर्वत समुद्र के नीचे तलहटी में चलने लगा। देवता चिल्लाये- महाराज! जिस मंदराचल से हम मथानी का काम ले रहे हैं, वह तो अब डूबा और हमारा काम फेल हुआ। कच्छप का रूप बना करके भगवान आये और मंदराचल को अपनी पीठ पर उठा लिया। समुद्र मंथन होता रहा और समुद्र से रत्न निकाले जाते रहे।

मित्रों! शंकराचार्य भगवान का कार्य करने के लिए रवाना हुए और उनकी दिग्विजय की यात्रा बाधित हो गयी। वे बीमार हो गये। शंकराचार्य ने कहा- भगवन्! मैं बीमार हूँ। मैं बाईस साल का छोकरा हूँ और देखिये मुझे भगन्दर का फोड़ा है। मैं बहुत छोटा हूँ और बीमार हूँ। आपका काम कैसे करूँगा? सम्राट मान्धाता उनके पास आये। उन्होंने कहा- शंकराचार्य! आप शंकर दिग्विजय

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

करने के लिए विश्व में जा रहे हैं। उन्होंने कहा- हाँ! जा रहा हूँ। तब राजा ने कहा- आप मेरी सेना ले जाइये और मेरे रथ और सैनिक ले लाइये। आपसे शास्त्रार्थ में जो कोई मुकाबला करे, जो ज्ञान से आपका मुकाबला करे तो आप कीजिए और जो बल से मुकाबला करे, ताकत से धमकाना चाहे तो मेरे सैनिक उनकी अकल ठिकाने लगा देंगे। राजा मान्धाता की करोड़ों की सेना और भरा खजाना आ गया शंकराचार्य की मदद के लिए।

मित्रों! मैं गाँधी जी की बात कहूँगा, जो अभी-अभी की बात है। कैसे भगवान की सहायता मनुष्य के ऊपर बरसती हुई चली गयी और चली जाती रहेगी। जापान में एक छोटा सा छोकरा था। उसके मन में आया कि कमाते-खाते तो सभी हैं। धनवान, सुखी रहने की तमन्ना तो सभी के जी में है। मुझे एल.डी.सी., यू.डी. सी. बनने की अपेक्षा कुछ बेहतरीन काम करना चाहिए। मनुष्य का जीवन कुछ बेहतरीन कामों के लिए मिला है। इसलिए मुझे उन्हीं कामों में अपनी जिन्दगी को लगा देना चाहिए।

जापान के गाँधी कागावा के जी में यह बात आयी। जिस तरह से महात्मा गाँधी की तस्वीरें अपने यहाँ हर जगह रहती हैं। सभी महात्मा गांधी की जय बोलते हैं, सारा का सारा जापान भी एक ही आदमी की जय बोलता है और उस आदमी का नाम है- कागावा। एक छोटा सा विद्यार्थी, जिसके माँ-बाप मर चुके थे। अकेला बच्चा रह गया था। क्या करना चाहिए? हमारे आपके जैसा आदमी होता तो यह ख्याल करता, यह ख्वाब देखता कि ब्याह कर लेना चाहिए। बच्चे पैदा करना चाहिए और नौकरी करनी चाहिए। अच्छा घर लेना चाहिए और सिनेमा देखना चाहिए। बीबी के लिए जेवर बनाने चाहिए। इन्हीं ख्वाहिशों में सारी की सारी जिन्दगी खत्म हो जाती है।

मित्रों! अगर हमारे आपके जैसा घटिया आदमी जापान का गाँधी कागावा होता तो? पर कागावा की तमन्नायें वो थीं जो आध्यात्मिक मनुष्यों की होनी चाहिए। उन्होंने कहा- मुझे जापान की सेवा करने लिए भगवान ने भेजा है, मैं सेवा करूँगा। वह गाँव-गाँव गया, मोहल्ले-मोहल्ले गया। जहाँ कहीं भी गंदगी देखी, जहाँ कहीं भी कोढ़ी और गन्दे लोग देखे, जहाँ कहीं शराबी, गरीब, गंदे लोग रहते थे, रोज खून-खच्चर होते थे। गाली-गलौज होते थे। जहाँ सारे के सारे लोग नरक में डूबे पड़े थे। जापान के गाँधी कागावा वहाँ गए और उस मोहल्ले में अपनी झोपड़ी बना ली। उन्हीं दरिद्र लोगों के बीच रहने लगे। •

(क्रमशः)

प्राचीन परंपराओं की तुलना में विवेकशीलता का अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन करने वाले संत सुकरात को उस देश के कानून के अनुसार मृत्युदंड की सजा सुनायी गयी। सुकरात के शिष्य अपने गुरु के प्राण बचाना चाहते थे। उन्होंने जेल से भाग निकलने के लिए एक सुनिश्चित योजना बनायी और उसके लिए सारा प्रबंध कर लिया। प्रसन्नता भरा समाचार देने और योजना समझाने के लिए उनका एक शिष्य जेल में पहुँचा और सारी व्यवस्था उन्हें कह सुनायी। शिष्य को आशा थी कि प्राणरक्षा का प्रबंध देखकर उनके गुरु प्रसन्नता अनुभव करेंगे।

सुकरात ने ध्यानपूर्वक सारी बात सुनी और दुखी हो करके कहा- मेरे शरीर की अपेक्षा मेरे आदर्श का जीवित रहना अधिक श्रेष्ठ है। मैं मर जाऊँ परंतु मेरे आदर्श जिंदा रहे, यही उत्तम है। किंतु यदि आदर्शों को खोकर शरीर जीवित रह सका तो वह मृत्यु से भी अधिक कष्टकारी होगा। न तो मैं सहज विश्वासी जेल कर्मचारियों को धोखा देकर उनके लिए विपत्ति का कारण बनूँगा और न जिस देश का नागरिक हूँ, उस देश के कानून का उल्लंघन करूँगा। कर्त्तव्य मुझे प्राणों से भी प्रिय है। योजना रद्द करनी पड़ी। सुकरात ने हँसते-हँसते विष का प्याला पिया और कर्त्तव्यनिष्ठा को प्रतिष्ठित किया।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

नूतन परंपराओं का संवाहक बना विश्वविद्यालय

कोरोना संक्रमण के कारण छाए विश्वव्यापी संकट के मध्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने अपनी शैक्षणिक एवं जीवनोपयोगी गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने के लिए नवीन क्रियाकलापों को महत्त्व देना प्रारंभ किया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय का उद्देश्य ही मानवीय जीवन में सन्निहित अपरिमित एवं अतुलनीय दैवीय संभावनाओं को साकार करना रहा है।

इस अवधि में जब समस्त शैक्षणिक संस्थानों को नियमित गतिविधियों के लिए बंद कर दिया गया था- देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने अपनी ऑनलाईन पोर्टल सेवा के माध्यम से अनेकों नूतन प्रयोगों एवं प्रकल्पों को प्रारंभ कर किसी को यह अनुभव नहीं होने दिया कि विश्वविद्यालय की गतिविधियों में तनिक भी शिथिलता आयी है।

इस क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा एक यूट्यूब चैनल की शुरूआत की गयी जिसके माध्यम से विश्वविद्यालय के गणमान्य आचार्यों के द्वारा जीवन प्रबंधन, भारतीय इतिहास एवं परंपराएँ, भारतीय संस्कृति, संस्कृत, हिन्दी, कप्यूटर विज्ञान, पर्यटन, मीडिया एवं संचार, एनिमेशन, मनोविज्ञान जैसे सभी विषयों पर उद्बोधनों को दिया गया एवं साथ ही इन्हें जनसामान्य को उपलब्ध भी कराया गया। इन उद्बोधनों की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि यूट्यूब चैनल के लांच होने के एक सप्ताह के अंदर ही हजारों की तादाद में दर्शक इस चैनल की सदस्यता ग्रहण कर चुके थे।

इन्हीं महत्त्वपूर्ण गतिविधियों के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा गायत्री परिवार के मुख्य पर्व गायत्री जयंती पर अत्यंत उत्साह के साथ प्रतिभाग किया गया। यद्यपि लॉकडाऊन के नियमों के कारण बाहर के परिजनों का शांतिकुंज आना संभव न हो सका तथापि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में निवासरत सदस्यों के द्वारा शांतिकुंज की समस्त गतिविधियों में पूर्ण निष्ठा, समर्पण के साथ प्रतिभाग किया गया एवं परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी के आदर्शों पर चलने के संकल्प को पुनः स्मरण किया गया।

इसके उपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय में ग्रीष्म अवकाश घोषित किया गया। भारतीय सरकार द्वारा प्रदत्त दिशा-निर्देशों के अनुरूप सितंबर 2020 से प्रारंभ किए जाने वाले शैक्षणिक वर्ष की तैयारियाँ भी इसके साथ प्रारंभ हो गयीं।

सामान्य क्रम में इस अवधि में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थी गायत्री परिवार के विभिन्न केंद्रों पर सामाजिक परिवीक्षा हेतु जाया करते हैं परंतु इस वर्ष की अभूतपूर्व परिस्थितियों के कारण उस परंपरा में भी समयानुरूप बदलाव किया गया। इस वर्ष की परिवीक्षा परमपूज्य गुरुदेव के विचारों को ऑनलाईन प्लेटफॉर्म के माध्यम से ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने का माध्यम बनी और सभी विद्यार्थियों ने 'हम गायत्री परिजन हैं'- इस नाम से एक सफल ऑनलाईन अभियान को संपन्न कराया।

• • •

बलि अपनी सम्पदा लोकहित के लिए भगवान को सौंपना चाहते थे। शुक्राचार्य ने भरसक स्वार्थ को प्रधानता देने और दान न करने के लिए समझाया। यहाँ तक कि संकल्प का जल छोड़ने के लिए बने कमंडलु के छिद्र में उड़कर बैठ गए। बलि ने गुरु के भी अनुचित आदेश का उल्लंघन किया और कमंडलु के छिद्र में सींक डालकर अवरोध बने गुरु को निकाल फेंका। इसी प्रसंग में शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। वास्तव में सत्कार्य में रोड़ा अटकाने वालों को ऐसे ही भुगतना पड़ता है।

अपनों से अपनी बात

इस विष से सावधान रहिए

जब समुद्र मथा गया तो उसमें से सबसे पहले विष, फिर वारुणी, उसके बाद अन्य रत्न निकले थे। युग निर्माण के लिए, मूर्छित समाज को जाग्रत करने के लिए भी गायत्री संस्था द्वारा वह अमृत निकालने के लिए समुद्र मंथन का कार्य हो रहा है, जिसे पीने से यहां के निवासी इस देवभूमि को अमरों, भूसुरों की निवासस्थली प्रत्यक्ष रूप में दिखा सकें।

यह समुद्र मंथन ठीक प्रकार से चल रहा है या नहीं, इसकी प्रारंभिक परीक्षा यही है कि इसमें कितना विष निकलता है, यह देखा जाए जब सड़ी हुई कीचड़ की नाली साफ की जाती है तो उसमें से नाक फाड़ने वाली बदबू उड़ती है। दुर्बुद्धि की, दुर्भावनाओं की, स्वार्थपरता और पाखण्ड की कीचड़, बहुत दिनों में हमारे धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में पड़ी सड़ रही है उसे साफ किया जा रहा है तो वे तत्त्व जिनके स्वार्थों को हानि पहुँचती है, स्वभावतः विरोध करेंगे। असुरता को नष्ट करने वाले जब कभी भी अभियान हुए हैं, उनके प्रतिरोध के लिए असुरों ने पूरी शक्ति से प्रत्याक्रमण किये हैं। त्रेता में इस प्रकार के अभियान में संलग्न ऋषियों को कच्चा चबा-चबाकर असुरों ने हड्डियों के पहाड़ लगा दिये थे जिन्हें देखकर रामायण के अनुसार यह दृश्य उपस्थित हुए-

अस्थि समूह देखि रघुराया।
पूछी मुनिहिं लागि अति दाया॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाये।
सुनि रघुवीर नयन जल छाये॥
निसिचर हीन करहुँ महि,
भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि
जाइ-जाइ सुख दीन॥

विश्वामित्र के इस प्रकार के अभियान के विरुद्ध मारीच, सुबाहु, ताड़का की पूरी सेना संघर्ष में रत हुई। वह आक्रमण इतने प्रचण्ड थे कि विश्वामित्र घबरा गए, अपने लक्ष्य की असफलता के दुष्परिणाम अनुभव करने लगे। अन्त में दशरथ जी के यहाँ जाकर उनके पराक्रमी पुत्रों को सहायता के लिए माँग कर लाए।

क्रिया की महत्ता प्रतिक्रिया से ही जानी जाती है। बुखार की गर्मी को थर्मामीटर से नापा जाता है। गायत्री परिवार का समुद्र मंथन कितना शक्तिशाली एवं प्रभावपूर्ण है इसकी एक ही पहचान है कि विरोधी आसुरी तत्त्व इससे कितने क्षुब्ध हुए और उन्होंने इसे असफल बनाने का कितना प्रयत्न किया है। जहां तक सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं विरोध, निन्दा, आक्रमण के समाचार जगह-जगह से आ रहे हैं। यह बड़े सन्तोष के समाचार हैं, उन्हीं के आधार पर दो बातों का पता लग सकता है-

1. अपना कार्य कितनी उच्च स्थिति में हैं, यदि अपना कार्य नगण्य होगा तो उसका विरोध भी नगण्य ही होगा। यदि कार्य में कुछ गहराई है तो उसे असफल होने के लिए असुरता उतने ही तीव्र प्रयत्न करेगी।

2. अपने कार्यकर्त्ताओं की श्रद्धा कितनी सच्ची है, यदि ढीले मन के, अस्थिर विचारों के, अधूरे विश्वास के अपने परिजन हैं तो वे आसानी से बहक जाएँगे। मतिभ्रमों में उलझकर इस अलभ्य अवसर से हाथ खींच लेंगे, कोई कोई तो सहयोग छोड़कर विरोधी भी बन जाएँगे, किन्तु जो सच्चे होंगे वे आड़े वक्त में काम आने वाले सच्चे मित्रों की तरह अन्त तक मोर्चे पर डटे रहेंगे।

कार्य की महत्ता तथा साथियों की श्रद्धा की परीक्षा, विरोधी आक्रमणों के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार नहीं हो सकती। चूँकि सच्चाई में हजार हाथी के बराबर बल होता है और सत्यरूपी प्रह्लाद की रक्षा भगवान नृसिंह स्वयं करते हैं। नृसिंह-मनुष्यों में जो सिंहस्वरूप वीर पुरुष हैं वे धर्मवृक्ष को गिरने न देने के लिए अपना पूरा सहयोग देते हैं। राम और लक्ष्मण, विश्वामित्र रूपी प्रह्लाद के लिए नृसिंह ही थे। जब कभी भी अधर्म धर्म को नष्ट करने वाले

‘गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना’ वर्ष

कठोर आक्रमण करते हैं तब संरक्षक नृसिंह भी सामने आ ही जाते हैं और धर्म की नैया डूबते-डूबते बच जाती है।

गायत्री परिवार के कार्यक्रमों के पीछे इस महान यज्ञानुष्ठान के पीछे सत्य की दैवी शक्ति मौजूद है। इसलिए इसमें से किसी को भी विचलित होने की रत्ती भर भी जरूरत नहीं है। फिर भी प्रह्लाद की तरह कठिन परीक्षा देने को तैयार रहना ही होगा। सभी शाखाएँ तथा गायत्री उपासक अपने-अपने कार्यों में संलग्न रहते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखेंगे कि उनके धर्म कार्यों को असफल बनाने के लिए आसुरी तत्त्वों ने क्या-क्या कार्य किए।

चूँकि इस युग में तलवार से सिर काटने का असुरता का हथियार काम में नहीं आता, अब तो इसका प्रचार अस्त्र-मतिभ्रम पैदा करना, कोई बेसिरपैर की बातें कहकर, कोई निराधार लांछन लगाकर लोगों के नव अंकुरित धर्मोत्साह को समाप्त कर देना ही है। असुरता का यह अस्त्र कहाँ कितनी तेजी से घूम रहा है इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। साथ ही यह भी देखना चाहिए कि उस आक्रमण से अपनी सेना के कितने साथी घायल हो गये, कितने पीठ दिखाकर भाग गये तथा कितनों ने उनका मुकाबला किया। नृसिंह का कार्य किन-किन वीर पुरुषों ने कितनी सीमा तक पूर्ण किया।

युग निर्माण के लिए आध्यात्मिक अमृत निकालने के प्रयोजन से जो समुद्र मंथन हो रहा है, उसकी शक्ति अब तक किस सीमा तक पहुँच चुकी इसकी जाँच इस समय करनी है। सभी परिजन अपने क्षेत्र के आसुरी आक्रमणों, उसके परिणामों तथा उनसे बचा लेने के प्रयत्नों की पूर्ण सूचना से केन्द्र को अवगत कराते रहेंगे ताकि वस्तुस्थिति का पता चलता रहे। संस्था की धर्मसेवाएँ जितनी द्रुतगामिता के साथ आगे बढ़ेंगी उतनी ही आसुरी प्रतिक्रियाएँ भी प्रबल होंगी। इन संघर्षों का भी एक बड़ा ही मनोरंजक एवं उत्साहवर्द्धक इतिहास बनेगा। युग निर्माण के प्रत्येक अवसर पर भारी संघर्ष हुए हैं। इस बार भी उनका होना अनिवार्य है। अन्तर केवल अस्त्रों का है। इस संघर्ष में विरोधी पक्ष तलवार के बजाय मतिभ्रम फैलाने वाले गोले दागेगा। आत्मरक्षा के लिए हममें से हर एक को सतर्क रहना चाहिए। आज के धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में इस संघर्षात्मक महाभारत का जो सूत्रपात हो रहा है उसमें अपना कार्य यथाभाग व्यवस्थित रहकर हर परिजन को पूरा करना है।

समुद्र मंथन का विष निकल रहा है। आगे जैसे-जैसे मंथन तीव्र होगा विष और भी वेग के साथ उफनेगा। इससे साधारण श्रेणी के दुर्बल परिजनों को बचाया जाना चाहिए। साथ ही कुछ ऐसे नीलकंठ भी निकालने चाहिए जो विष को समेटने के लिए अपने आपको खतरों में डाल दें। नृसिंह और राम-लक्ष्मण न निकलें तो यह प्रह्लाद और विश्वामित्र का प्रतीक आंदोलन संकटपूर्ण स्थिति को पहुँच सकता है। रचनात्मक कार्यक्रमों के साथ-साथ हमें बचाव के सुरक्षा मोर्चे का भी ध्यान रखना होगा। तभी इस चतुर्मुखी संघर्ष के चक्रव्यूह को पार करना संभव हो सकेगा।

(परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित वांगमय-
युग निर्माण योजनाः दर्शन, स्वरूप एवं कार्यक्रम के 3.9 से पुनर्प्रकाशित)

अनावश्यक आवेश एवं विशेष व्यक्ति को संत्रस्त करना अंततः दुःख पहुँचाता है। एक साँप को बहुत गुस्सा आया। उसने फन फैलाकर गरजना और फुँफकारना शुरू किया और कहा- 'मेरे जितने भी शत्रु हैं आज उन्हें खाकर ही छोड़ूँगा। उनमें से एक को भी जिन्दा न रहने दूँगा।' मेंढक, चूहे, केंचुए और छोटे-छोटे जानवर उसके उस गुस्से को देखकर डर गए और छिपकर देखने लगे कि आखिर होता क्या है? साँप दिन भर फुँफकारता रहा और दुश्मनों पर हमला करने के लिए दिन भर इधर-उधर बेतहाशा भागता रहा। फुँफकारते-फुँफकारते उसके गले में दर्द होने लगा। शत्रु तो कोई हाथ आया नहीं, पर कंकड़-पत्थरों की खरोंचों से उसकी सारी देह जख्मी हो गई और शाम को चकनाचूर होकर वह एक तरफ जा बैठा। वस्तुतः गुस्सा करने वाला शत्रुओं से पहले अपने को ही नुकसान पहुँचाता है।

'गृहे - गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

कविता

विलय- विसर्जन

तुममें विलय विसर्जन के भाव से मिलेंगे,
गुरुदेव आपमें हम घुल कर के ही मिलेंगे॥

चन्दन से सर्प लिपटे मणि सर्प का खजाना॥
अग्नि से धूम जल का है कीच से याराना॥
संसार का सदा से दस्तूर है पुराना॥
सद्गुण रहें सुरक्षित चाहे जो हो ठिकाना॥

कांटों के बीच रहकर गुलशन में हम खिलेंगे॥
गुरुदेव आपमें हम घुल कर के ही मिलेंगे॥

इंसान कामना के चक्कर में फंसा हुआ है॥
मोहान्ध वासना का फंदा पड़ा हुआ है॥
क्रोधाग्नि का समन्दर मन में भरा हुआ है॥
मद, लोभ से गले तक बेबस धंसा हुआ है॥

माया को त्याग माया के पति से जा मिलेंगे॥
गुरुदेव आपमें हम घुल कर के ही मिलेंगे॥

जप, ध्यान, ज्ञान का बस संयम बना के रखना॥
सांसों का सांस में ही सम्पूर्ण यज्ञ करना॥
मन, बुद्धि में सदा ही सुविचार श्रेष्ठ भरना॥
कर्मों की गति गहन है निष्काम कर्म करना॥

कर्तव्य कर्म पथ से किंचित भी न हिलेंगे॥
गुरुदेव आपमें हम घुल कर के ही मिलेंगे॥

संक्रांतिकाल का है चलता समय अभी है॥
अवतार प्रभु का होता बढ़ता अनय जभी है॥
नवयुग के जो सृजेता बिखरे जहाँ कहीं हैं॥
सद्गुरु के घोष में अब तैयार सब वहीं हैं॥

दुनिया बदल रही है बदले हुए मिलेंगे॥
गुरुदेव आपमें हम घुल कर के ही मिलेंगे॥

- शोभाराम शशांक

हम में से एक भी ऐसा नहीं रहे, जिसे मात्र पत्रिका का पाठक भर कहकर चुप रहा जा सके। विचारों की सार्थकता तब है, जब वे कार्यरूप में परिणत होने की दिशा में अग्रसर हो सकें। अखण्ड ज्योति के लेखों का परिजनों की मनोभूमि को अब इस कसौटी पर कसे जाने का अवसर आ गया है। हमारे यह दोनों ही पक्ष तभी खरे कहे जा सकते हैं। जब उनमें सक्रियता का दर्शन हो सके।

-अखण्ड ज्योति (जून 1972)